CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

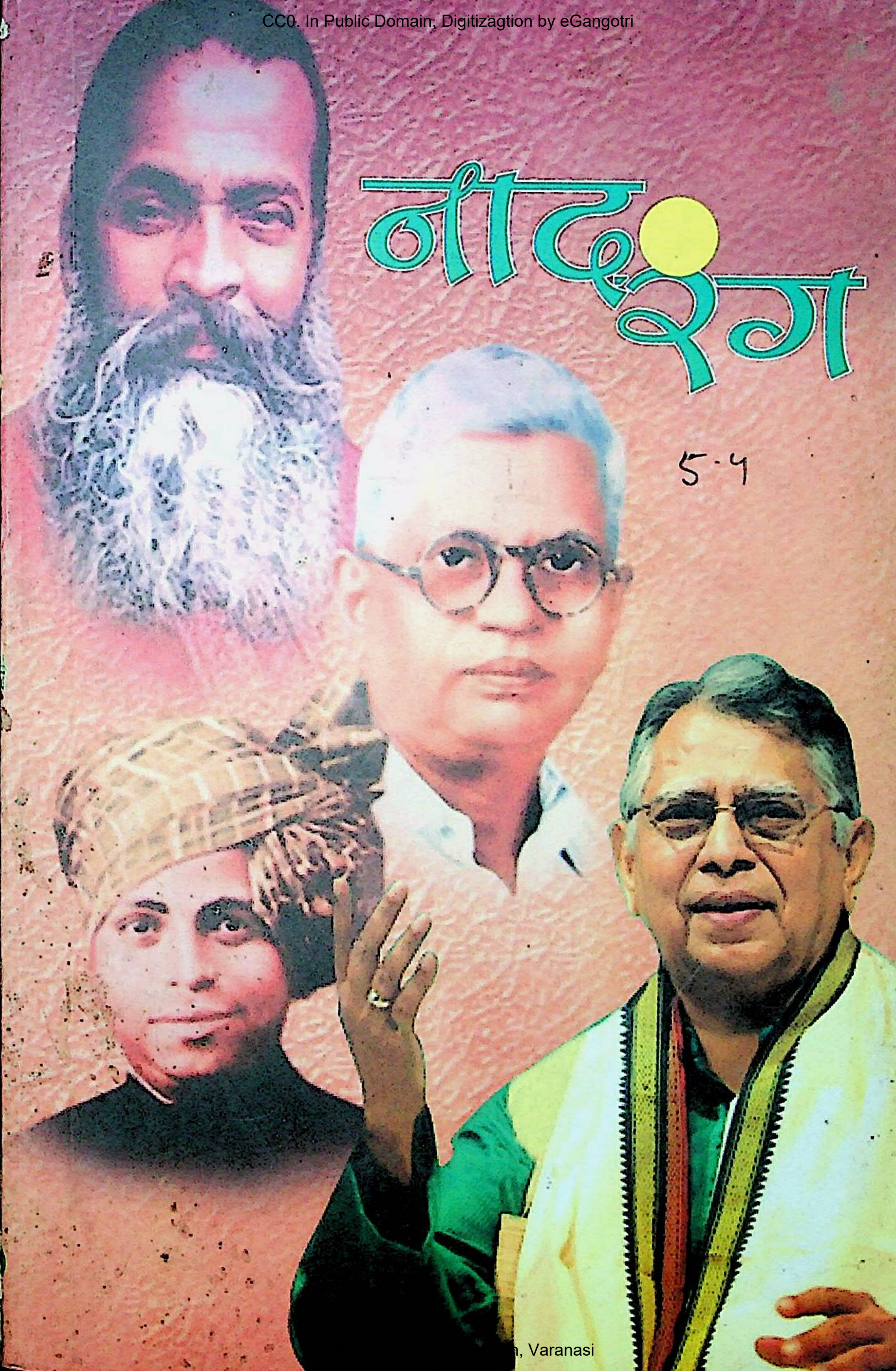

n, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

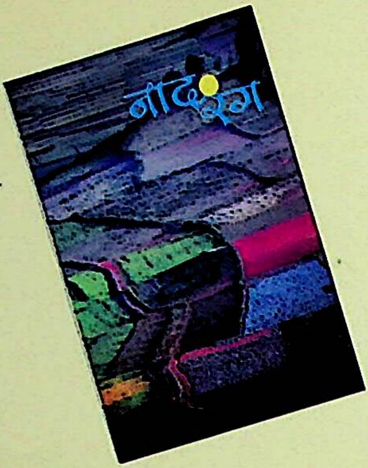

अंक चार

–कभी मुड़कर उस मकबूल को देखा है
नवीन जोशी
–मुख्यधारा के रंगमंच का असली चेहरा
राजेश कुमार
–मर्सियाः एक सशक्त एकल नाट्य विधा
फरजाना महदी
–सुर सम्राट अली अकबर खान
अभिजीत राय चौधरी
–बातचीत
सैय्यद हैदर रजा
रतन थियम
राजन–साजन मिश्र
पांडेय सुरेन्द्र
शैलेन्द्र भट्ट
–कला कलरव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाद रंग

कला, संगीत और रंगमंच की संगत

संपादक

आलोक पराड़कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्ष – 1, अंक – 3
अप्रैल, जुलाई 2018 (संयुक्तांक)

सहायक संपादक
निकिता सरीन

प्रतिनिधि
मुंबई/दिल्ली-रेखा के.राणा
पुणे-अरुणा बढ़े

विज्ञापन व्यवस्थापक
आशीष कुमार नंदी

इंटरनेट पर
https://naadrang.page/
www.rangraag.in

मूल्य : रु 100 मात्र
संस्थाओं के लिए : रु 150 मात्र
दस अंकों के लिए : रु 1000 मात्र (डाक खर्च सहित)

सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित रचनाओं का किसी भी रूप में उपयोग करने के लिए संपादक की अनुमति अनिवार्य है। पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के हैं और इनसे संपादक, प्रकाशक या संपादकीय सहयोगियों का सहमत होना आवश्यक नहीं है। समस्त कानूनी विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ होगा।

संपादन पूर्णतः अवैतनिक

संपर्क
3/ 51, विश्वास खंड, गोमती नगर, लखनऊ-226010
दूरभाष-09415466001
ईमेल-naadrangemail@gmail.com

स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक आलोक पराड़कर द्वारा क्रिएटिव इंक, बी-7, हिमांशु सदन, 5 पार्क रोड, लखनऊ-226001, उ.प्र. से मुद्रित और 3/ 51, विश्वास खंड, गोमती नगर, लखनऊ-226010, उ.प्र. से प्रकाशित, संपादक – आलोक पराड़कर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आरोह

5/ रंगराग

7/ आत्मकथ्य
स्वरों की संगत में
विद्याधर व्यास

33/ ज्ञान बाहर से भीतर आता है,
कला भीतर से बाहर
विद्याधर व्यास से विजय शंकर मिश्र की बातचीत

43/ एक चौमुखा व्यक्तित्व
कृष्णा बिष्ट

45/ कुछ अविस्मरणीय यादें
स्वतंत्र शर्मा

47/ बहुआयामी व्यक्तित्व
मुकुन्द भाले

49/ अमूल्य और प्रेरणात्मक अनुभव
नितिन वैद्य

51/ कार्यशालाओं के बहाने
सुनीरा कासलीवाल व्यास

65/ प्रेरणात्मक अनुभव
जितेन्द्र खरे

66/ सीखना जैसे उत्सव हो
दिव्या कौल

69/ पलुस्कर भजन गायन परंपरा के साथ
विनीत गोस्वामी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

73/ गुरुजी द्वारा निर्मित रचनाओं का विश्लेषण
गतिकृष्ण नायक

82/ गुरुगुन लिखा न जाय
शिवजी पांडेय 'शिव'

85/ संस्थागत संगीत शिक्षण परंपरा
भारत भूषण

90/ मंच प्रस्तुतियों में तराना,
त्रिवट एवं चतुरंग का स्थान
सौरभ चौहान

95/ मेरे गुरु
सानिका गोरेगांवकर

97/ चित्र दीर्घा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रंग राग

आलोक पराड़कर

मेरी क्रिकेट में बहुत रुचि नहीं लेकिन छोटे भाई अनन्त की इसमें गहरी रुचि है। जब बनारस में हम सभी साथ थे और क्रिकेट का कोई मैच चलता तो पूरे समय हमारे घर में टेलीविजन पर इसे देखा जा रहा होता था। हमारे घर में बहुत कमरे नहीं थे, इसलिए न चाहते हुए भी मैं इसमें शामिल ही हो जाता। मेरी इसमें जानकारी कम है तो मैं अक्सर उससे पूछ भी लेता। कई बार की बातचीत में मैंने ये समझा कि अक्सर तब किसी खिलाड़ी का प्रदर्शन अचानक ही खराब होता चला जाता है जब उसे कप्तान के पद की जिम्मेदारी मिल जाती है। पूरी टीम को बेहतर प्रदर्शन के लिए प्रेरित करते हुए, मुकाबले के तनाव का असर अक्सर उसके व्यक्तिगत प्रदर्शन पर पड़ता है।

लेकिन मैंने जीवन में पाया है कि आपकी अपनी क्षमता और प्रतिभा ही अधिक महत्वपूर्ण होती है और अपवाद भी बनते जाते हैं। कई कलाकार ऐसे रहे हैं जो संगीत के साथ ही कई दूसरे कामों में भी वैसे ही दक्ष हैं और इसका असर उनके संगीत पर नहीं पड़ता। किशन महाराज के लंबे समय तक साथ रहते हुए मैंने उन्हें संगीत के साथ ही सामाजिक कार्यों, समारोहों के आयोजन या चित्रकला, बागवानी और लेखन में भी बराबर सक्रिय पाया है। साहित्य में भी कई ऐसे लेखकों का साथ रहा जिन्होंने अपनी पत्रिकाएं निकाली और अपना लेखन भी प्रभावी ढंग से करते रहे। प्रसिद्ध कथाकार-उपन्यासकार अखिलेश इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं जो 'तद्भव' जैसी श्रेष्ठ पत्रिका के संपादन के साथ ही अपना लेखन भी लगातार सक्रियता से करते रहे हैं। हालांकि इसके विपरीत हमें ज्यादा उदाहरण मिलते हैं। समाचार पत्रों के संपादक बनने पर मैंने कई पत्रकारों को यह कहते सुना है कि अब खुद कुछ लिखने का समय नहीं मिल पाता है। साहित्य में भी इसी तरह 'न लिखने के कारण' गिनाते संपादक कई हैं।

विद्याधर व्यास से मेरा परिचय बनारस में करीब तीन दशक पूर्व एक कलाकार के रूप में तो हो चुका था लेकिन उन्हें करीब से जानने का मौका तब मिला जब वे 2004 में लखनऊ के भातखंडे संगीत संस्थान सम विश्वविद्यालय में कुलपति बनकर आए। उन दिनों मैं 'दैनिक जागरण' में सांस्कृतिक पत्रकारिता करता था। एक पत्रकार के तौर पर उनसे लगातार मुलाकातें होती थीं जो जल्द ही आत्मीयता में बदलने लगी। भातखंडे संस्थान की स्थितियां तब बहुत अच्छी नहीं थीं। यह संस्थान कुछ ही समय पूर्व सम विश्वविद्यालय बना था। व्यास जी को यहां एक बाहरी व्यक्ति माना गया। असहयोग और आन्तरिक राजनीति बहुत थी लेकिन मैंने पाया कि कुछ ही महीनों में स्थितियां बदल रही हैं। विरोध और असहयोग करने वाले कई लोग अब उनकी प्रशंसा कर रहे हैं। यह उस कलाकार की प्रशासकीय क्षमता के ही कारण था जो यहां कुलपति की कुर्सी पर बैठा था। ये एक दूसरे विद्याधर व्यास थे, उस गायक से भिन्न जिसे मैं बनारस में सुनता आया था। एक कुशल शास्त्रीय गायक के साथ ही वे अच्छे प्रशासक भी साबित हुए। माना जाता है कि एक अच्छे प्रशासक के लिए कई बार कठोर होना अनिवार्य हो जाता है। उसे कई सख्त निर्णय लेने पड़ते हैं, अनुशासनात्मक कार्रवाई करनी पड़ती है। व्यास जी अक्सर मुझे संस्थान के बारे में पूछा भी करते क्योंकि उन्हें मालूम था कि यहां ज्यादातर लोगों से मेरे अच्छे संबंध हैं। मैं कई लोगों की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रशंसा करता, उनके बारे में होने वाली बातों के बारे में भी बताता लेकिन मैंने उनकी कार्य करने की शैली को अलग ही पाया। वे बहुत कठोर कदम उठाने की जगह लोगों को बदलने में अधिक विश्वास रखते थे। मृदुभाषी और आकर्षक व्यक्तित्व के कारण उनके लिए ऐसा कर पाना थोड़ा आसान भी होता था। अकादमिक स्तर पर उनकी व्यक्तिगत उपलब्धियां भी उल्लेखनीय थीं और एक संगीतशास्त्री के रूप में उनकी अच्छी जानकारी और समझ रही है। यही वजह थी कि धीरे-धीरे ज्यादातर लोग उनके प्रशंसक होते गए।

लेकिन प्रशासक के साथ ही मैंने उन्हें सृजनात्मक और नई नई योजनाओं से लबरेज भी पाया। उन्होंने कुलपति रहते हुए संस्थान में कई ऐसे कार्य किए, पाठ्यक्रम चलाए, कार्यशालाएं कीं जिनके बारे में पहले कभी सोचा नहीं गया था। उन्होंने संगीत के विद्यार्थियों के लिए मंच प्रस्तुतियों के साथ ही नए-नए क्षेत्रों के बारे में जानकारी दी। व्यास जी के व्यक्तिगत संपर्क के कारण बहुत सारे गुणी लोग संस्थान में आते और कई-कई दिनों तक रुककर विद्यार्थियों को प्रशिक्षण दिया करते। इससे विद्यार्थियों को नए आयाम का पता चला। हालांकि इन सबके बावजूद उन्होंने यहां कार्यकाल पूरा नहीं किया। वे कोलकाता में संगीत रिसर्च अकादमी चले गए। वे वहां बहुत समय तक नहीं रहे लेकिन पता चला कि वहां भी उन्होंने प्रशासक के तौर पर रचनात्मक योजनाओं की शुरूआत कर दी थी और ये बात बहुत सारे लोगों को अच्छी नहीं लगी।

व्यास जी का जीवन एक गायक, एक प्रशासक और संगीतशास्त्री के रूप में न सिर्फ मिसाल है बल्कि यह भी बताता है कि किस प्रकार अपनी क्षमता और योग्यता से कई क्षेत्रों में श्रेष्ठता से कार्य किया जा सकता है। किसी संस्थान का नेतृत्व करते हुए भी उनकी दूसरी गतिविधियां और कार्य समानान्तर चलते रहे। वे एक ऐसे कप्तान रहे जो एक खिलाड़ी के रूप में अपने प्रदर्शन को प्रभावित नहीं होने देता है। 75 वर्ष के अवसर पर कार्यक्रमों की शृंखला वास्तव में उनके इस जीवन का उत्सव है। जब यह योजना बन रही थी तो हमने 'नादरंग' का अंक उन पर एकाग्र करने का निर्णय किया। विचार बना कि इसका लोकार्पण दिल्ली के पहले समारोह में हो। अपने तैयार अंक को रोककर हमने इसे तैयार किया जिसमें स्वतः व्यास जी के साथ ही उनकी पत्नी सुनीरा कासलीवाल व्यास और शिष्य-शिष्याओं का पूरा सहयोग मिलता रहा। 'नादरंग' में पहली बार रंगीन चित्रों के अलग से पृष्ठ शामिल किए जा रहे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वरों की संगत में...

विद्याधर व्यास

जन्म, मृत्यु अपने हाथ में नहीं रहते। हम यह तय नहीं कर सकते है कि हमारा जन्म कहां हो, कब हो, किस परिवार में हो। इसी प्रकार मृत्यु भी कब हो, कहां हो, कैसे हो - यह सब ईश्वर के हाथ में होता है। और ईश्वर की, मैं समझता हूं, मुझ पर असीम कृपा रही है कि मेरा जन्म एक ऐसे संगीत के परिवार में हुआ है जो कि एक प्रगतिशील परिवार रहा है। इसका मुझे आनंद है और यह मेरा सौभाग्य है। यह आनंद और सौभाग्य का भाव आगे चलकर प्रतीत होता है क्योंकि एक नवजात शिशु को तो यह अनुभूति नहीं हो सकती। यह बाद में महसूस किया मैंने कि वाकई कितना सौभाग्यशाली हूं मैं। सांगीतिक परिवार में जन्म होने से संगीत के वातावरण में पलता गया। और इस वातावरण का पर्याप्त परिणाम मुझ पर हुआ। और वह एक अच्छी बात, मैं मानता हूं। मैं अपने माता-पिता की एकमात्र संतान हूं। कहने के लिए मेरी एक बहन थी, जो बहुत छोटी उम्र में ही हमसे बिछड़ गई। यह मेरे जन्म से पूर्व की घटना है। मेरे पिताजी का नाम पं. नारायणराव व्यास व माताजी का नाम सौ. लक्ष्मीबाई व्यास। इनकी शादी हुई 1924 में। मेरे पिताजी का जन्म 1902 में हुआ। और जब उनकी आयु 11 वर्ष थी, तब वह मुंबई में गंधर्व विद्यालय में, पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के शिष्य बने।

जिस परिवार में मेरे पिताजी का जन्म हुआ, वह कोल्हापुर का एक परिवार था। और मेरे दादाजी पंडित गणेशपंत व्यास। वह संस्कृत के पंडित थे। और देवी की पूजा-अर्चना, यही उनका एक तरह का मुख्य कार्य था। कोल्हापुर में प्रसिद्ध महालक्ष्मी मंदिर है, जिसे अंबाबाई मंदिर भी कहा जाता है, बहुत ही प्राचीन एवं प्रसिद्ध मंदिर है, एक शक्तिपीठ जैसा है, तो उस मंदिर में उनकी नियुक्ति प्रमुख पौराणिक के पद पर हुई थी। और मंदिर के पास ही एक वाड़ा अर्थात एक बड़ा मकान था उसमें वह सपरिवार रहते थे, जिसके वह मालिक थे। और वह वाड़ा 'व्यासांचा वाड़ा' कहलाता था, यानि व्यास जी का घर। घर में वातावरण भी संस्कृत और भक्ति का था। मंदिर में सतत आना-जाना रहता था। मेरे दादाजी का परिवार बड़ा था। मेरे पिताजी भाइयों में सबसे छोटे, और उनसे बड़े भाई थे शंकरराव व्यास। इन दोनों में संगीत की बहुत प्रतिभा थी। जहां पर भी कुछ संगीत होता था, गाना-बजाना होता था, वहां दोनों जाते थे, और वे 'व्यास बंधु' के नाम से जाने जाते थे। घर में संगीत का वातावरण कुछ इस तरह था कि मेरे दादाजी सितार बजाते थे। और हारमोनियम भी बजाते थे। घर में हारमोनियम था, सितार था। उस जमाने के मशहूर हारमोनियम वादक थे गोविंदराव टेंबे संगीतकार, वे भी कोल्हापुर के थे, उनका हमारे घर में आना-जाना था। तो इस तरह घर में संगीत का भी वातावरण था, और संस्कृत का। पं. नारायणराव व्यास और शंकरराव व्यास उस समय स्कूल जाते थे और संगीत का विशेष आकर्षण था उनमें। उस समय पं विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने गंधर्व महाविद्यालय स्थापित किया था। और वह जगह-जगह जाकर कार्यक्रम करते थे, और धन इकट्ठा करके गंधर्व विद्यालय का खर्च चलाते थे। गंधर्व महाविद्यालय गुरुकुल था। पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर संगीत महर्षि, संगीत उद्धारक थे और उनका बड़ा कार्य था। उन्होंने 1901 में लाहौर में गंधर्व महाविद्यालय की स्थापना की। और 1908 में गंधर्व विद्यालय की मुंबई शाखा की स्थापना की। बाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में धीरे-धीरे मुंबई ही उसका केन्द्र बन गया।

गंधर्व महाविद्यालय एक गुरुकुल था। मुंबई में पंडित जी ने एक बड़ी इमारत बनाई। विद्यार्थियों को रखते हुए, उनका सारा खर्चा करते हुए, बिना किसी शुल्क के वे संगीत शिक्षण करते थे। वे जगह-जगह घूमते थे एवं प्रतिभाशाली बच्चों को ढूंढते थे, उनको बुलाते थे। उनके घरवालों को मनाते थे कि इन्हें भेजिए, हम संगीत सिखाएंगे। और संगीत में ही इनका व्यवसाय हो जाए, हंम ऐसा प्रयास करेंगे। उस जमाने में एक बात थी कि संगीत का समाज में स्थान इतना अच्छा नहीं था। तो सम्भ्रांत घर के लोग, जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी, उनके घर के बच्चे, यद्यपि संगीत के गुण उनमें होते थे फिर भी पूरी तरह से संगीत के प्रति समर्पित हो सकें, कि संगीत में ही कुछ करेंगे, ऐसा वातावरण नहीं था। क्योंकि संगीत कला को पूरी तरह से प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हुई थी। तो इसलिए जो बच्चे आते थे, वे सामान्य आर्थिक स्थिति जिनकी कमजोर होती थी, ऐसे बच्चे आते थे। क्योंकि देखा जाए तो वहां एक आकर्षण था कि अगर यहां एक बार स्वीकार कर लिया तो उनका कोई खर्चा उनके परिवार पर नहीं रहता था। उनका खाना-पीना, रहना, शिक्षा, संगीत शिक्षण, यह सारे खर्च पंडित जी वहन किया करते थे। हां एक बात थी कि पंडित जी एक बांड जरूर भरवा लेते थे कि जिस बच्चे पर यह सब खर्चा कर रहे हैं, वो बीच में छोड़कर चला गया तो, या फिर ऐसे ही आया हो कि खाना-पीना मिल रहा है, संगीत सीखे न सीखे। इस सोच से कोई आए, मन लगाकर न सीखे तो पंडित जी, जो कि इतना धन खर्च करते थे, इसलिए ये बांड लिखवा लेते थे कि कम से कम नौ साल अथवा दस-ग्यारह साल, यहां पर रहकर, संगीत सीखूंगा और बीच में छोड़कर नहीं जाऊंगा। यह पंडित जी तय किया करते थे कि बच्चा कितने साल रहेगा, कितने साल विद्या ग्रहण करेगा। और अगर उनको लगता था कि सात-आठ साल इसके लिए काफी है तो उतना ही समय रखते थे। अभिभावकों से यह सब लिखवा लेते थे, और साथ ही यह भी लिखवा लेते थे कि अगर बीच में यह छोड़कर चला जाएगा तो आप मुझे यह सारा खर्चा उसके ब्याज के साथ लौटा देंगे। उनके अभिभावकों से इस आशय का बांड लिखवाया जाता था। बच्चा बीच में छोड़कर नहीं जायेगा। या हम इसे निकालेंगे नहीं गुरुकुल से।

हुआ यूं कि, पंडित जी धनार्जन करने के लिए जगह-जगह जाते थे, और साथ में जहां-जहां वे जाते थे, देखते थे, कि कौन-कौन से परिवार के बच्चे हैं, जो अच्छा गाते हैं, जैसे विद्यार्थी हमें चाहिए। उस दौरान कोल्हापुर में उनका आगमन हुआ था। उनके कार्यक्रम भी हुए, जैसे आजकल के हाउसफुल प्रोग्राम होते हैं, ऐसे बहुत सफल कार्यक्रम हुए।

उस समय हमारे घर की आर्थिक स्थिति कुछ कमज़ोर हो गई थी। मेरे पिताजी का जन्म हुआ 1902 में, और उसी दरम्यान हमारे दादाजी की मृत्यु हो गई। पिताजी के मामा, वे ही हमारे घर को चलाते थे, आर्थिक सहायता देते थे। तो यह एक स्थिति थी। तो इसी दरम्यान जब पंडित जी का वहां आगमन हुआ तो उस समय शंकर और नारायण बड़े प्रतिभाशाली हैं, अच्छा गाते हैं यह मानकर इनको लेकर मामाजी ले गये वहां। मेरे पिताजी कहते थे कि अगर हमारी आर्थिक स्थिति उस समय अच्छी होती तो हम संगीत की दुनिया में नहीं जाते। कुछ पढ़ाई वगैरह करके कुछ नौकरी करते। क्योंकि आर्थिक स्थिति कमजोर थी इसलिए दूसरे मार्ग खोजने पड़े। तो एक तरह से आर्थिक स्थिति का कमजोर होना, वह शाप एक वरदान साबित हुआ। तो उन दोनों को लेकर पंडितजी के पास ले गए। पंडित जी ने पूछा कुछ सुनाओ, गाओ। पंडित जी ने जब इनका गाना सुना तो वे भी प्रभावित हो गये कि ये तो अच्छा गा रहे हैं। अच्छी आवाज है। बोले- आओगे क्या? संगीत सीखोगे क्या? इन्होंने कहा-हां, क्यों नहीं संगीत सीखेंगे। गाना हमें अच्छा लगता है। तब यह तय हुआ कि इन्हें दाखिल कर लेते हैं। मेरे पिताजी के बड़े भाई, मेरे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ताऊ, जिन्हें हम काका कहते हैं उनसे चार साल बड़े थे। उनका जन्म 1898 का और मेरे पिताजी का 1902 का। तो पंडित जी ने यह कहा कि अभी तो हम बड़े वाले लड़के को ले जाते हैं। और यह छोटा थोड़ा सा छोटा है। इसे बाद में बुला लेंगे। यह 1910 की बात है। तो शंकरराव व्यास वहां रहकर सीखते थे। तो वहां कम्युनिकेशन के साधन तो थे नहीं। और मेरे पिताजी घर मे अकेले हो गए। शंकर-नारायण जोड़ी थी तो शंकर वहां चले गए नारायण यहां अकेले रह गए। तो उन्होंने जिद की कि मुझे वहां जाना है। ओर एक साल के भीतर ही वह भी वहां, मुंबई पहुंच गए कोल्हापुर से। यह 1911 की बात है। और गंधर्व महाविद्यालय में सवेरे के समय खड़े हो गए कि हम आए हैं। तो वहां शोर मच गया कि शंकर का भाई आया है। शंकर का भाई आया है। तो वे वहाँ पंडित जी से मिले। पंडित जी ने कहा यह बहुत ही छोटा है। मामाजी ने कहा इसका मन नहीं लग रहा है। और यही रट कर रहा है कि मैं वहां जाऊंगा। पंडित जी ने कहा अगर इसका इतना मन है तो अच्छी बात है उम्र में छोटा है तो कोई बात नहीं उसका बड़ा भाई तो यहां है ही। बड़ा भाई छोटे भाई की देखभाल भी कर लेगा। तो उन्होंने हां कह दिया। और 1911 में नारायणराव व्यास गंधर्व महाविद्यालय गुरुकुल में दाखिल हुए। 1922 में उन्हें गंधर्व महाविद्यालय की सर्वोच्च उपाधि संगीत प्रवीण प्राप्त हुई। तो गुरुगृह में रहकर सीखने का उनका काल लगभग 11 वर्ष, 1922 में समाप्त हो गया। उस समय पंडित विष्णु दिगम्बर अपने शिष्यों को, जो कि शिक्षा पूरी करते थे, उन्हें भारत में विभिन्न जगहों पर भेजते थे। और कहते थे कि अब आप वहां जाकर बसो और वहां रहकर संगीत प्रचार-प्रसार का कार्य करो। जैसे मेरे पिताजी के साथ जो शिष्य थे, वामनराव ठकार उनको इलाहाबाद भेजा। उनके सीनियर जो शिष्य थे उनमें एक नाम था विष्णु अन्नाजी कशालकर उनको इलाहाबाद भेजा। उन्होंने वहां जाकर 'प्रयाग संगीत समिति' की स्थापना की। और संगीत का प्रचार कार्य शुरु किया। शंकरराव बोडस को कानपुर भेजा। उनके साथ एक और शिष्य थे उनको भी कानपुर भेजा। यह स्वतंत्रता के पूर्व की बात थी। शंकर राव बोडस के छोटे भाई लक्ष्मणराव बोडस को कराची भेजा, जनार्दन पेठे को लाहौर भेजा। गोविंद विट्ठल भावे को बंगलोर भेजा। तो इसी सिलसिले में 'व्यास बंधु' शंकरराव-नारायणराव व्यास को अहमदाबाद, गुजरात भेजा। ताकि वे वहां जाकर संगीत के प्रचार-प्रसार का काम शुरु करें। तो 1922 में दोनों बंधु अहमदाबाद गए और वहां पर उन्होंने 'गुजरात संगीत महाविद्यालय' की स्थापना की। और संस्था के माध्यम से एवं व्यक्तिगत रूप से संगीत का प्रचार-प्रसार प्रारम्भ किया।

1924 में मेरे पिताजी की शादी हो गई। 1926 में मेरी बड़ी बहन का जन्म हुआ। उनका नाम ललिता था। और दुर्भाग्य से 1930 में वह चल बसी। उन्हें 'स्मॉल पॉक्स' बीमारी हुई जो उस समय लाइलाज थी। और उसके 14 साल बाद 1944 में मेरा जन्म हुआ। तो उस समय पिताजी की बहुत ही ख्याति बढ़ी हुई थी और इतने ख्यातिप्राप्त व्यक्ति के घर में इतने वर्षों के बाद संतान हुई है और पुत्र हुआ है तो इसकी बड़ी चर्चा थी। उस समय पिताजी के गुरुजी के आदर्शों पर चलते हुए दो शिष्य हमारे घर में रहते हुए शिक्षा अर्जन कर रहे थे। उनके नाम थे - शंकर अभ्यंकर और अविनाश आफड़े। अविनाश आफड़े जी की 10-15 साल पहले मृत्यु हो गई। शंकर जी अभी हैं। वे दोनों हमारे घर में रहते हुए, गुरु-शिष्य परंपरा के तहत सीखते थे। तो उसी समय हमारा जन्म हुआ। घर में संगीत का वातावरण था। जब इर्द-गिर्द संगीत का वातावरण होता है तो इसके संस्कार होते रहते हैं। यह अनायास होने वाली बात है। संगीत करने के लिए यह करो, वह करो, ऐसा नहीं करना पड़ता। वातावरण ही ऐसा होता है। पिताजी के पास सीखना सुबह नौ बजे से शुरु होता था। और उससे पहले घर में जो शिष्य रहते थे, उनसे पिताजी स्वराभ्यास करवाते थे, वो सुबह पांच बजे से शुरु होता था और छह बजे तक चलता था, और उसके बाद नहाना-धोना, नाश्ता करना और उसके बाद नौ बजे से उनकी क्लास शुरु होती थी। शिष्यों को सामने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बैठकर सिखाना, राग सिखाना, बंदिशें सिखाना, बढ़त सिखाना कि कैसे बढ़त हो सकती है। जैसे मैं गा रहा हूं वैसे मेरे साथ या मेरे पीछे गाओ एक तो यह तरीका था और फिर मैं जो गा रहा हूं उसका जो पैटर्न है, आलाप का, उसको ध्यान में रखते हुए उसी पैटर्न के साथ एक अलग तरह का आलाप गाओ। मेरा अनुकरण करो साथ में अपनी बुद्धि को देखो कि कैसे यह किया जाता है। और अपनी बुद्धि से ऐसा करने की कोशिश करो। पूरी तरह से यह शिक्षा दी जाती थी। नौ से 12 बजे तक यह सिलसिला चलता रहता था। तो उसमें घर में जो विद्यार्थी रह रहे थे उनके अलावा बाहर से भी विद्यार्थी आते थे। एक समय में तीन से पांच शिष्य उससे ज्यादा नहीं होते थे। तो 12 बजे के बाद भोजन वगैरह होता था। भोजन होने के बाद पिताजी विश्राम करते थे। और शाम को चार बजे से चाय वगैरह लेने के बाद अलंकारों का अभ्यास, सुरों का अभ्यास होता था और फिर पांच-साढ़े पांच बजे के लगभग वह हमारी संस्था 'व्यास संगीत विद्यालय' जो कि हमारे घर से कुछ 15 मिनट की ही दूरी पर था वहां जाते थे। दादर सेंट्रल के दो क्षेत्र हैं, दादर ईस्ट और दादर वैस्ट। हमारा मकान 'दादर ईस्ट' में है और हमारा विद्यालय दादर वैस्ट में है। वहां विद्यालय जाकर विद्यालय पद्धति से, पाठ्यक्रम के अनुसार कि एक-एक घण्टे की कक्षा होती थी। फर्स्ट इयर, सेकेण्ड इयर के हिसाब से। एक-एक क्लास में आठ से दस छात्र होते थे। एक समय में चार-चार कक्षाएं चलती थी, चार कमरे थे, और वहां जाकर मेरे काका शंकरराव व्यास जो कि प्रिंसिपल थे और मेरे पिताजी वाइस प्रिंसिपल थे, संस्था का निरीक्षण करते थे। और जो स्टाफ था, अध्यापक थे, जो कि सीनियर स्टूडेंट होते थे वही टीचर होते थे। विद्यालय का समय पांच से आठ बजे तक का था। कभी-कभी जब ज्यादा विद्यार्थी होते थे तो आठ से नौ भी हो जाते थे। जब भी पिताजी मुंबई में होते थे तो नियमित रूप से वहां का निरीक्षण करना, शिक्षकों का मार्गदर्शन करना, कभी कोई शिक्षक नहीं आया, तो शिक्षक नहीं आया कक्षा नहीं चलेगी ऐसा कभी नहीं होता था, वे खुद सिखाते थे। सा रे ग म प की प्राथमिक कक्षा को भी उन्होंने सिखाई है। यह 'रैगुलैरिटी' और अनुशासन उन्हें अपने गुरु से मिला। उन्हीं के आदर्शों पर रहते हुए ही वह संस्था चलाते थे। आठ बजे वह वहां से चलते थे और फिर घर आने के बाद भोजन, भोजन के बाद रेडियो सुनना, काफी स्टेशन आते थे, किसी न किसी स्टेशन पर शास्त्रीय गायन चलता ही था, और शास्त्रीय गायन की अवधि रात को ही होती थी ज्यादातर, सवेरे और रात को होता था। तो वह सुनते थे कि किसने कैसा गाया और उसका विश्लेषण करते थे, चर्चा करते थे कि यह ऐसे गाया जाता है, यह अच्छा गाया या फिर इसमें यह कमी है। उसके बाद दस बजे वे सोने के लिए जाते थे। तो उनकी दिनचर्या इस तरह की थी।

कहने का मतलब यह है कि हम घर पर थे तो इस तरह का संगीत हमारे कानों पर पड़ता था। श्रवण संस्कार होते थे। जब मैं विद्यालय जाने लगा तो यहां घर पर नौ बजे से कक्षाएं चल रही होती थी और हमारे स्कूल का समय 11 बजे से रहता था। घर के सामने ही स्कूल था। तो जब घर से चलते थे स्कूल के लिए, तब दिमाग में वहीं संगीत चलता था, चौथी क्लास का बच्चा जो स्कूल जा रहा है वह देसी राग का बड़ा ख्याल गुनगुनाते-गुनगुनाते स्कूल जा रहा है। यह श्रवण संस्कार थे। उस समय राग क्या है, उसके सुर क्या हैं, ख्याल क्या है, शब्द क्या है, कुछ मालूम नहीं। तो इस तरह के संगीत के संस्कार मुझे मिले। हमारे पिताजी ने हमारी पढ़ाई में कोई दखल नहीं की बल्कि प्रोत्साहन देते थे। हमारी पढ़ाई भी अच्छी चल रही थी। पहले दो-चार टॉपर्स में हमारा भी नाम होता था। और स्कूल की सांगीतिक गतिविधियों में तो हम आगे थे ही। प्राथमिक स्कूल सवेरे 11 बजे से शुरु होता था तो वहां पहले प्रार्थना होती तो उसमें शामिल होना और उसका संचालन करने की जिम्मेदारी हम पर होती थी। तो पहले प्राइमरी स्कूल हुआ फिर मिडिल स्कूल फिर हायर स्कूल। और यह सारी शैक्षणिक संस्थाएं हमारे घर के इर्द-गिर्द ही थी। हमारे घर के दाहिने वाले कोने पर मान्टेसरी स्कूल था, घर के बाएं कोने पर प्राथमिक शाला थी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घर के सामने मिडिल एवं हाईस्कूल था और घर के पीछे हमारा रूहिया कॉलेज। तो हम जब ग्रेजुएट हुए तो जैसे घर की प्रदक्षिणा पूरी हो गई। पढ़ाई में मेरी प्रगति अच्छी थी। इसके साथ-साथ घर में भी संगीत का अभ्यास चल रहा था। सिर्फ श्रवण संस्कार ही नहीं, हम बैठकर वहां सुनते थे, आवाज़ लगाते थे। शाम को विद्यालय में जाकर हम वहां के पाठ्यक्रम के अनुसार राग, बंदिशें इत्यादि भी सीखते थे। आठ वर्ष की आयु से हमने कक्षा में जाकर विधिवत रूप से सीखना शुरु किया। घर में गुरुकुल पद्धति थी, और विद्यालय में संस्थागत पद्धति। तो हम जब मैट्रिक पास हुए तब हम संगीत विशारद भी हो चुके थे। पर उस समय संगीत सीखने का उद्देश्य यह नहीं था कि हम उसमें करियर बनाएंगे, इसी में हम अपना जीवन-यापन करेंगे। घर में संगीत है तो इसलिए सीख रहे हैं। जब मैट्रिक हुआ तो सोचा ग्रैजुएशन आर्ट्स कॉलेज से कर लेते हैं। लेकिन तब भी उस समय ऐसा नहीं था कि संगीत कर रहे हैं तो इसमें 'करियर' बनाना ही है। उस समय यह भी एक था कि मेरे पिताजी के जो गुरुबंधु थे मुंबई में एवं अन्यत्र जगहों पर उनके बच्चे भी पूरी तरह से संगीतज्ञ बनने का नहीं सोचते थे। बाद में दूसरी पीढ़ी के कई लोगों ने संगीत छोड़कर दूसरे विषय अपनाए तो मेरे ऊपर भी पिताजी ने ऐसी बंदिश नहीं डाली।

इसी बीच ग्रेजुएशन करने के बाद मैंने विदेश जाकर कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी में पढ़ने का मन बना लिया। अभी मेरे सपने उड़ान लेने ही लगे थे कि कुछ ऐसी घटना घटी कि मेरा कैम्ब्रिज जाने का सपना छिन्न-भिन्न हो गया। बहुत दिनों तक कुछ सूझा नहीं कि आगे क्या करना है? मन एकदम खिन्न हो गया। फिर एक दिन मन में बिजली सी चमकी कि मुझे 'संगीत' ही करना है। मन पर जो निराशा छाई थी वह इस विचार से एकदम छंट गई। मन प्रसन्न हो उठा। मैंने विशारद कर लिया था और आगे भी मैं चल रहा था। उसके कुछ दिन पूर्व शिमला मे मैंने कार्यक्रम दिया, तो उसे लोगों ने बहुत सराहा। और पिताजी भी कहने लगे थे कि अरे, तू तो गाता है, मुझे पिताजी की इस बात से बहुत अच्छा लगा था। तो मैंने सोचा कि जो चीज़ मेरे हाथ में है और जो चीज़ मैं कर सकता हूं क्यों न मैं उसी को करूं। हो सकता है भगवान की यही इच्छा हो। मैंने पिताजी को कहा मैं संगीत करूंगा। मैं अपना करियर अब संगीत में ही बनाऊंगा। तो एक क्षण के लिए उन्हें अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ कि यह क्या कह रहा है, वाकई यह अपने मन से कह रहा है या फिर किसी दबाव में कह रहा है। तो वह उठे उन्होंने तानपुरा उठाया। मेरे सामने रखा। बोले- संगीत करोगे? मैंने कहा हां। देखो सोचो संगीत करोगे? मैंने कहा हां। पिताजी फिर बोले-रखो तानपुरे पर हाथ और कहो मैं संगीत ही करूंगा। मैंने तानपुरे पर हाथ रख दिया और कहा मैं संगीत ही करूंगा और जो आप कहेंगे वैसे ही करूंगा, और अब मैं पूरी तरह से आपका शिष्य बनूंगा, यही करूंगा। वे खुश हो गये और उस दिन से उन्होंने मुझ पर वही अनुशासन लगाया जिस अनुशासन में वह अपने गुरुजी से सीखे, मतलब पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी का जो अनुशासन था, जिस अनुशासन में उन्होंने अपने शिष्यों को तैयार किया। वहीं अनुशासन मेरे पिताजी ने मुझ पर लगाया। और ऐसे मेरे जीवन को एक अलग ही मोड़ मिल गया। और वह अनुशासन क्या था - सवेरे पांच बजे उठना और पांच से छह-साढ़े छह तक स्वर साधना मन्द्र साधना, आवाज का लगाव, जैसे एक सांस में एक सुर, इसी तरह का स्वर साधना आवाज़ लगाना, तैयार करना, आवाज का लगाव कैसा हो, उस तरह से ध्यान देकर सारे स्वरों को लगाना। इसके बहुत फायदे हैं। शुरु-शुरु में बहुत ही मुश्किल हो गया था रोज पांच बजे उठना, लेकिन पिताजी उठते थे। उनको भी लगता था कि मेरी जिम्मेदारी है, इसको तैयार करना। तो यह जो एक सिलसिला रहा, जिसको कहेंगे प्रोफेशनली अपने करियर के लिए अपनी आवाज बनानी और उसके मुताबिक एक सिस्टम के अंदर रहकर, आवाज को तैयार करने की, तो ये करना ही होता है।

हमारी जो ग्वालियर गायकी है वह आकार की गायकी है। तो उसके लिए जो आवाज बनानी होती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है वह है आकार में, खुले आवाज में, स्वरों का उच्चारण और स्वरों का लगाव। वह बहुत जरूरी है। इसलिए मन्द्र साधना, यह बहुत जरूरी है और मन्द्र साधना मतलब आपकी जो रेंज होती है आवाज़ की, उस रेंज को बढ़ाना। और रेंज को बढ़ाने के साथ सांस का उपयोग करके, एक सांस में एक सुर लगाना वो भी खुली आवाज़ में लगाना और उसके बाद में नीचे जाना निषाद फिर धैवत यह मंद्र साधना है। इसके पीछे तर्क यह है कि हम सवेरे के समय जब सोकर उठते हैं तो हमारी आवाज़ स्वाभाविक रूप से नीचे की तरफ गई हुई होती है। तो वह वह समय है जब नीचे के सुर लगाने हैं, मन्द्र सप्तक के सुर लगाने है। इसीलिए इसे मन्द्र की साधना, खरज की साधना कहा गया है। तो यदि आवाज में एक वजन निर्माण करना है, एक प्रकार की ताकत पैदा करनी है स्वरों के लगाव में, तो उसमें इस साधना से आसानी होती है, यह एक तरह का व्यायाम है। और आवाज को तैयार करना उसका उद्देश्य रहता है। इस एक घण्टे की स्वर साधना के साथ-साथ प्राणायाम भी हो जाता है। जैसे एक सांस में एक सुर लगाते हैं फिर अच्छी तरह से सांस लेते हैं छोड़ते हैं, दूसरा स्वर लगाते हैं। उससे दमसांस भी बढ़ता है। तो यह सारी जो चीजें हैं उसकी शुरुआत हो गई। और इस तरह से मेरा एक नया सांगीतिक जीवन शुरु हो गया। क्योंकि मैंने निश्चय किया था कि अब यही करना है, इसी के साथ चलना है। तो पूरा मन लगाकर मैं इसको सीखता गया। सवेरे पांच बजे उठना, छह-साढ़े छह तक स्वरसाधना करना, स्वर लगाना उसके बाद नाश्ता वगैरह करने के बाद नौ बजे जब सारे विद्यार्थी आते थे तो उनके साथ बैठना, राग सीखना, बंदिशें सीखना, बड़े ख्याल, छोटे ख्याल, उसका विस्तार किस तरह से किया जाता है और अलग-अलग अलंकारों का प्रयोग, जैसे मींड है, गमक है, आंदोलन, बहलावा उनका प्रयोग, इस तरह रागों के स्वरों के लगाव किस तरह से होते हैं, कैसे होते हैं वह सीखना यह 12 बजे तक चलता था। कहने का मतलब यह है कि अच्छी तरह से पिताजी के पूरे देख-रेख में स्वराभ्यास, स्वर के लगाव, आवाज तैयार करना और साथ में रागदारी और गायकी का अभ्यास, घराने की गायकी क्या होती है, वो अभ्यास है, हमारी पलुस्कर परंपरा में किस तरह से स्वरों के लगाव होते हैं। तो यह सारी चीजें एक-एक करके सामने आने लगी। और उनका उसी तरह से हम अभ्यास करने लगे। गायकी की बात जहां तक है, ये ग्वालियर घराना है, ग्वालियर घराने के दो धड़ सामने आते हैं, दो धाराएं हैं। एक तो वह जो ग्वालियर घराना जो ग्वालियर में रहा, वहां पर पनपा। और दूसरी धारा ग्वालियर घराने की वह गायकी जो महाराष्ट्र में आयी। प्रातः स्मरणीय पंडित बालकृष्ण इचलकरंजीकर जी इसे महाराष्ट्र में लाए और महाराष्ट्र में जो स्थानीय संगीत चल रहा था, और उनमें से जो विशेष नाट्य संगीत चल रहा था उनके साथ में 'इंटरैक्शन' होकर महाराष्ट्र में ग्वालियर गायकी थोड़ी सी बदली। वह धारा थोड़ी सी बदल गई तो वह कैसे बदली? उसमें क्या विशेष बातें हैं वह धीरे-धीरे एक-एक करके ये अध्ययन के विषय बने, सामने आते गए। अरे, यह भी चीज है, इस पर भी ध्यान देना है, यह भी चीजें हैं, कैसे हुई, किस तरह से हुई, उसका भी अभ्यास करना है। ऐसे एक-एक चीज सामने आने लगी। फिर पलुस्कर परंपरा की जो भजन गायकी है उसका भी अभ्यास साथ-साथ होने लगा। कैसी है भजन गायकी? किस तरह से अलग हैं? मतलब संगीत का समग्र दिशाओं से या समग्र तरीके से उसका अभ्यास होने लगा। तो पूरी तरह से फुल टाइम संगीत के ही अभ्यास के लिए समर्पित हो गए थे।

पिताजी को जहां-जहां से निमंत्रण आते थे कार्यक्रम के लिए, तो उनके साथ जाने लगा था, उनके पीछे तानपुरे पर बैठकर मंच का अनुभव लेना कि मंच पर प्रस्तुति कैसे होती है? अलग-अलग जगह के अलग-अलग श्रोतावर्ग कैसे होते हैं? श्रोताओं की समझ और उनका लैवल देखते हुए किस तरह से गाने की प्रस्तुति करनी है? ताकि उनकी समझ में आ जाए और वे उसका आनंद ले, गायकी का आनंद लें। इसी बीच हमारा एकल गायन भी शुरु हुआ। अपनी प्रस्तुति देना, वे अनुभव भी हमें मिलने लगे तो यह सिलसिला चल पड़ा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तो डेढ़-दो साल इसी में बिताने के बाद मन में कहीं एक असंतुष्टि थी कि स्नातक होने का तो आज के जमाने में कोई अहमियत नहीं है। तो मैंने सोचा कि अब एम.ए. करना है। मुख्य तो अपना काम संगीत ही था। पर अगर हम इसके साथ एम.ए. भी कर सकें तो कितना अच्छा होगा। तो यूनिवर्सिटी में हम गए। वहां पर तलाश किया कि एम.ए. में ऐसा कौन सा कोर्स है, जिसे लेकर हम एम.ए. कर सकते हैं? तो वहाँ पूछताछ करने के बाद एक जानकारी बड़े ही काम की मिल गई कि वहां पर एक विषय है सोशियोलॉजी, उसमें आप एम.ए. कर सकते हैं। और उसके लिए यूनिवर्सिटी में ज्यादा वक्त नहीं देना होगा। तो हमने सोशियोलॉजी एम.ए. में एडमिशन ले ही लिया। पर अब घर में कैसे बताना, पिताजी तो फिर एकदम नाराज हो जाएंगे कि देखो फिर तुम यह कॉलेज वगैरह के चक्कर में पड़ गए। तो हमने पिताजी को कुछ नहीं बोला, पर माताजी को जरूर बताया। माताजी ने कहा कि बिना पिताजी को बताए, पिताजी ने जो टाइम-टेबल निश्चित किया था बिना उसमें कोई व्यवधान डाले इसे कर सकोगे? मैंने कहा, हां। तो माताजी ने कहा ठीक है, अगर तुम्हारी ऐसी मर्जी है तो करो। तो ऐसे होता था कि स्वर-साधना सवेरे का और क्लास वगैरह होने के बाद खाना खाने के तुरंत बाद 12.20 बजे तक हम घर से निकल जाते थे। पिताजी को कहते कि जरा हम लाइब्रेरी में जाते हैं, थोड़ा पढ़ने के लिए। तो 12.20 बजे से चलकर वहां एक बजे तक यूनिवर्सिटी में डिपार्टमेंट में पहुंच जाते थे। एक से तीन बजे तक हमारी क्लास होती थी। और फिर वहां से तीन बजे निकलकर पौने चार-चार बजे तक घर पहुंच जाते थे। तब तक पिताजी का विश्राम भी हो जाता था। और फिर वहीं अभ्यास का सिलसिला शुरु हो जाता था। अब अप्रैल 1968 में एम.ए. की परीक्षा भी आ गई थी। तो उसके छह महीने पहले हमने डरते-डरते पिताजी को बताया कि हम लाइब्रेरी में जाते थे तो साथ-साथ हमने एम.ए. में ज्वॉइन किया था। बस चार-छह महीने की बात है उस विषय का थोड़ा सा सिर्फ परीक्षा के लिए अभ्यास करना चाहते हैं, संगीत के अभ्यास को ज्यादा विघ्न न डालते हुए। एक बार परीक्षा दे दी तो वह बात वहीं खत्म हो जाएगी। तो थोड़ा सा हमें समय चाहिए। तो पिताजी हंसे और बोले तुम कितना भी क्यों न छुपा लो, तुम्हारी यह बात हमारी नजर में आई थी। लेकिन हम कुछ बोले नहीं। हमने सोचा ठीक है अगर इसको करना है तो करने दो और संगीत का अभ्यास तो तुम बराबर कर ही रहे थे। और जिस तरह की तुम्हारी प्रगति हमें अपेक्षित थी उस तरह से हो रही थी। तो पिताजी ने हमें अनुमति दे दी और हमने मन लगाकर अप्रैल में एम.ए. की परीक्षा दे डाली। रिजल्ट आया तो आश्चर्य की बात, कि जो मेरिट लिस्ट आई उसमें तीसरे नंबर पर मेरा नाम था। बिना किसी अपेक्षा के ऐसा यश मिला। हमने सिर्फ इतनी अपेक्षा के साथ परीक्षा दी थी कि हमें बस पास होना है और हमें ऐसा यश मिला कि मेरिट में हमारा तीसरा स्थान आ गया। उसके बाद हम पूरी तरह से संगीत में लग गए।

महाराष्ट्र में संगीत नाटक एक बड़ा ही प्रभावी नाटक का प्रकार था। अभी भी है। इन नाटकों में जो संगीत का प्रयोग होता था उस संगीत को बनाने के लिए और गाने के लिए जो मार्गदर्शन मिलता था, उसके लिए सारे घरानेदार गुरुओं का, उस्तादों का सहयोग नाटक कंपनियों ने लिया था। अतः नाट्य संगीत के जो गाने थे वे रागों में निबद्ध थे, बड़े-बड़े रागों की जो रचनाएं थी, ख्याल के पारंपरिक ख्याल थे, उनमें नाटक के शब्द बिठाकर नाट्य संगीत की रचना हुई। यानि मराठी के शब्द व नाटक का जो भाग है उसकी जो 'सिचुएशन' है, उसके मुताबिक मराठी शब्द उन गीतों में थे पर शब्दों के साथ जो स्वर लगे, जो स्वर रचना थी वह ख्याल की बंदिशों की ही थी। अलग-अलग तालों में तीनताल, द्रुत एक ताल, झपताल, रूपक, अलग-अलग तालों में, अलग-अलग रागों में सारी बंदिशों की रचनाएं की गई है, और बंदिशों कें मूल शब्दों की जगह ये नाट्य के, मराठी शब्द लगाए गए। तो इस तरह से यह एक बड़ा ही सशक्त प्रकार 'नाट्य संगीत' का महाराष्ट्र में विकसित हुआ। नाटक में संगीत का भरपूर उपयोग होता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था। लगता था जैसे एक छोटी सी महफिल हो रही है, उस तरह से संगीत नाटक की प्रस्तुति होती थी। संगीत नाटक को देखने व संगीत के आकर्षण के कारण से खूब लोग आते थे। और इस वजह से कभी-कभी एक नाटक, जो कि दो-ढाई घण्टे तक चलने वाला होता था वह संगीत के कारण चार-चार घण्टे तक चलता था। लोग वाह-वाह करते थे और कहते थे 'वंस मोर-वंस मोर'। यानि फिर एक बार। जब किसी गाने की फरमाईश होती थी तो नाटक वहां रुक जाता था और एक महफिल ही शुरु हो जाती थी। एक गाना गा दिया और लोगों ने वाह-वाह कर दिया और लोगों ने 'वंस मोर' कह दिया तो वह गाना दुबारा गा रहे हैं तिबारा गा रहे हैं। फिर एक करेक्टर ने एक तरह से ऐसे गा लिया तो दूसरा करेक्टर भी कहता था कि मैं भी गाऊंगा, तो वह भी गा रहा है और इस तरह से मंच पर एक प्रतियोगिता सी शुरु हो जाती थी। संगीत की प्रस्तुतियां होने लगती थी। और नाटक कहीं विलुप्त हो जाता था। यह बहुत बार हो चुका है। कभी-कभी इसका अतिरेक भी हो जाता था। तो जैसे कहते थे कि संगीत, 'नाटक' को ही खा जाता था। मतलब नाट्य संगीत में संगीत ही ज्यादा हो गया, नाट्य कम हो गया। तो कहने का मतलब यह है कि नाट्य संगीत एक बड़ा ही सशक्त माध्यम था और बहुत से कलाकार वहां विकसित हो रहे थे। उसी समय दिसंबर 1967 में एक नया नाटक मंच पर आया था। उस नाटक का नाम था 'कटियार कालजात घुसली' मराठी नाटक है, उसका हिन्दी मतलब है 'कटार कलेजे में घुस गई'। नाटक की जो कहानी थी वह घरानेदार गायकों के और उनके एक दूसरे की स्पर्धा पर आधारित थी। यानि एक तरफ एक घराने के उस्ताद खान साहब दिखाए गए और दूसरी तरफ एक घराने के पंडित दिखाए गये। इसमें एक तरफ मुस्लिम उस्ताद और उस्तादी गायकी और उनका घराना और दूसरी तरफ हिन्दू पंडित, उस तरह की पंडिती गायकी और उनका घराना दिखाया गया और दोनों में स्पर्धा। स्पर्धा इस बात की कि कौन सा घराना और कौन सी गायकी ज्यादा लोगों को आकर्षित करती है, प्रभावित करती है? कौन ज्यादा पॉपुलर हों जायें जिससे कि उसी को ज्यादा मान्यता मिले, यह स्पर्धा। तो दोनों गायकी में कितना फर्क है? वह दिखाने का इस नाटक में बहुत अच्छा प्रयास किया गया था। दिसंबर 1967 में इस नाटक का पहला शो हो गया। और वह बहुत ही सफल हो गया। हमने भी पिताजी के साथ दो या तीन बार यह नाटक हॉल में देखा था। इस नाटक में पंडितजी के शिष्य का, युवा साधक का रोल मराठी नाटकों के प्रसिद्ध एक्टर श्रीप्रसाद साहूकार करते थे। वे मेरे पिताजी के ही शिष्य थे। तो वे किसी कारण से यह रोल नहीं कर पा रहे थे। तो नाटक कंपनी के जो मालिक थे उन्होंने सोचा कि इस एक्टर को रिप्लेस करना चाहिए। किसी दूसरे आर्टिस्ट को लेना चाहिए जो इस रोल को कर पाये और हमारा नाटक बंद न हो पाए। तो वे ढूंढ रहे थे कि कौन ऐसा मिले जो शास्त्रीय गायक हो, और देखने में भी अच्छा हो। तो किसी ने हमारा नाम सुझाया कि यह युवा हैं और अच्छा गा रहे हैं। तो वे हमारे पिताजी के पास आ गए यह प्रस्ताव लेकर कि यह जो भूमिका है युवा गायक का, हम चाहते हैं कि आपके बेटे करें। तो आपकी क्या राय है? पिताजी ने कहा कि मेरा समय अलग था हमारे समय में हम इन चीजों से बिल्कुल दूर रहे, जानबूझकर दूर रहे। मेरे गुरुजी ने कहा था कि नाटक, सिनेमा इनसे दूर रहो, क्योंकि नाटक वालों के ऊपर, सिनेमा वालों के ऊपर एक ठप्पा लग गया था कि इनके साथ कुछ व्यसन जुड़े हैं। तो उनके नाटक देखने जाओ, बस उनकी कला का स्वाद ले लो और बाकी उनसे दूर ही रहो। तो इसलिए हम लोग इसमें नहीं गए। पर अब स्थिति अलग हो गई है। पढ़े-लिखे अच्छे लोग, इसमें आ रहे हैं। ऐसे कुछ नाम भी है जो पेशे से डॉक्टर है फिर भी वे नाटक में काम कर रहे हैं। तो अगर इसमें यह कुछ करना चाहे तो हमें कोई आपत्ति नहीं है। मना नहीं करेंगे। तो कंपनी के मालिक ने मुझसे भी पूछ लिया। तो मैं तो बहुत ही प्रभावित था इस नाटक से और इसमें इस तरह की भूमिका मुझे करने को मिलेगी तो मुझे बहुत अच्छा लगा। हालांकि मुझे नाटक का कोई अनुभव नहीं था। तो इस पर उन्होंने कहा कि वह तो हम देख लेंगे। आपको इसके लिए किस तरह से तैयार करना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है वह हम पर छोड़ दीजिए। आप तो बस हां करो। हमने हां कर दी और उससे हमारे जीवन का एक नया दौर शुरु हुआ। यह 1969 की बात है। सबसे पहले तीन महीने अच्छी तरह से उसका रिहर्सल करके रोल के लिए हमें तैयार किया गया। जिन्होंने नाटक लिखा था पुरुषोत्तम दार्वेकर नागपुर में रहते थे उनके यहां हम पन्द्रह दिन रहे। उन्होंने डायलॉग डिलीवरी कैसे होती है कैसे ऊपर नीचे के चढ़ाव होते हैं वो हमें सिखाये। एक बड़ी अच्छी बात उन्होंने कही, उन्होंने कहा कि आपके रागदारी संगीत में आलाप और तान आप जैसे कुशलता से करते हैं, वैसे हमारे यहां डायलॉग डिलीवरी होती है। तो किस तरह से डायलॉग डिलीवरी किया जाये, टोन में फर्क किया जाये और उसमें नाटकीयता लायी जाए, इन सभी बातों के लिए उन्होंने हमें तैयार किया। बड़े नामचीन गायक पंडित जितेन्द्र अभिषेकी जो थे, वो इस नाटक के म्यूजिक डायरेक्टर थे, तो उन्होंने बताया कि नाट्य संगीत हमारे ख्याल गायन से कैसे अलग होता है? उसमें रागों का प्रस्तुतीकरण नाट्य संगीत के माध्यम से कैसे होता है। वे सारी तकनीक हमने उनके साथ कर बैठ कर सीख ली। और फिर हमारे नाटक का पहला शो नवम्बर 1969 को हुआ। जो ईश्वर की कृपा से काफी सफल रहा। लगभग ढाई तीन वर्ष लगातार इस नाटक के शो होते गये। लगभग तीन-सवा तीन साल उस नाटक में हमने काम किया। लगभग 210 शो किये। हालांकि यह संगीत नाटक का अनुभव बहुत ही अच्छा रहा। लेकिन हमें उस समय भी यह पता था कि नाटक में काम करना मात्र हमारा उद्देश्य नहीं है। तो एक तरफ नाटक में शो करते थे और दूसरी तरफ संगीत सम्मेलनों में भाग लेते थे, हमारे 'इन्डीवीजुअल' कार्यक्रम होते थे। इसलिए नाटक कंपनी के मालिक प्रभाकर पणशीकर जी को हमने पहले ही बता दिया था कि हमारे जीवन का उद्देश्य सिर्फ नाटक करना या नाट्य संगीत कलाकार बनना नहीं है। इसलिए आप इस भरोसे में मत रहिये कि हम यही यही करते रहेंगे। हां, छोड़ने से पहले हम आपको सूचित अवश्य करेंगे। जब यह सब हो रहा था तो हमारा अकादमिक सोच-विचार भी चल रहा था। तो हमने अखिल भारतीय गंधर्व महाविद्यालय की उच्चतर डिग्री संगीताचार्य (डॉक्टरेट) की परीक्षा भी दे डाली। उसमें हमारे गाईड थे प्रोफेसर विनायक रामचन्द्र आठवले। वे बहुत ही परिपक्व एवं बुद्धिमान संगीतज्ञ थे। पंडित विनायक राव पटवर्धन जी के शिष्य थे। साथ ही उन्होंने उस्ताद विलायत हुसैन खान साहब से आगरा घराने की भी तालीम ली। यह बहुत ही बड़े विचारक, अभ्यासक, बड़े ही ऊंचे दर्जे के 'रिसर्चर' थे। तो उनके निर्देशन में हमें 'डिजर्टेशन' लिखना था। हालांकि 'संगीताचार्य' प्रैक्टिकल ओरिएण्टेड था, मगर 'डिजर्टेशन' जरूरी था। हमारा डिजर्टेशन ग्वालियर घराने के ऊपर था। 1971 में हमने संगीताचार्य की परीक्षा भी दे डाली जिसमें हम प्रथम आये। इस तरह सारी गतिविधियां चल रही थीं साथ-साथ। संगीताचार्य की इस परीक्षा में मेरे साथ विदूषी सुहासिनी कोरटकर ने भी परीक्षा दी थी।

जयपुर का संयोग अचानक से ही बना। हुआ यूं कि जयपुर में गवर्मेंट म्यूजिक कॉलेज में प्रिंसिपल के पद की एक पोस्ट निकली, राजस्थान पब्लिक सर्विस कमीशन की तरफ से। तो आठवले जी जो हमारे गाईड थे वे जयपुर में रहे हुए थे रेडियो सर्विस में। उनके मित्रों ने आठवले जी को कहा कि अगर कोई अच्छा व्यक्ति हो आपकी नजर में तो उनको भेजिये, हम संगीत संस्थान को, म्यूजिक कॉलेज को ऊपर उठाना चाहते हैं। अपग्रेड करना चाहते हैं। तो उन्होंने हमसे सारी बात बताई और पूछा जाओगे क्या, तुम्हें अच्छा अनुभव मिलेगा। मैंने कहा ठीक है, पिताजी से पूछूंगा। तो मैंने पिताजी से पूछा, पर इसके पहले ही जयपुर जाने की थोड़ी चर्चा कुछ शुभेच्छु लोगों को भी पता चल गयी, कि यह जयपुर जाने की सोच रहा है, तो सब लोग विरोध करने लगे और कहने लगे कि क्यों यह मुंबई जैसा शहर छोड़कर तुम जयपुर जा रहे हो, और मुंबई का संगीत का वातावरण छोड़कर जयपुर जैसी जगह में वहां क्या संगीत का वातावरण है? वहां सिर्फ एक म्यूजिक कॉलेज है, और एक सिर्फ प्रिंसिपल की नौकरी। पर पिताजी का सोचना दूसरी दिशा में था। उन्होंने कहा जाओ, ये भी अनुभव ले लो। लेकिन मैं तुम्हें जयपुर जाने के लिए कह रहा हूं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसका यह मतलब नहीं कि जयपुर जाओ और वहीं रह जाओ, ऐसा नहीं करना है। लेकिन इसके पीछे एक दूसरी बात यह थी कि मैं उस समय रोडियो में गाने लगा था। पिताजी को रेडियो के प्रोग्राम का फीडबैक ऐसा मिलता था कि वाह-वाह, बिल्कुल आपके जैसा गाता है, बिल्कुल आपके ऊपर गया है। और उस समय हमारे आदर्श बिल्कुल यही थे, गाने के आदर्श मेरे पिताजी नारायणराव व्यास और दूसरे आदर्श पं. डी.वी. पलुस्कर। हालांकि डी.वी. पलुस्कर शुरुआत में हमारे पिताजी से ही सीखे हुए थे, और उसके बाद वो पूना शिफ्ट हो गये तो पं. विनायक राव पटवर्धन जी से सीखने लगे। तो मेरे गाने में ये दोनों बराबर झलकते थे। मेरी आवाज बिल्कुल पिताजी से मिलती-जुलती थी। तो दोनों की गायकी मेरे गाने में आती थी और लोग काफी प्रशंसा भी करते थे। तो एक दिन हुआ यूं कि रेडियो पर मेरा गाना आ रहा था। पिताजी के एक परिचित थे, उन्होंने वह सुना, पर जब उन्होंने रेडियो ऑन किया तो पहले की 'अनाउंसमेंट' जा चुकी थी तो उन्हें शुरु में यह नहीं पता लगा कि कौन गा रहे हैं? तो उन्होंने मेरा गाना सुना उन्हें बहुत ही अच्छा लगा और फिर उन्होंने पिताजी को फोन करके बताया कि 'क्या बढ़िया रिकार्डिंग आपका चल रहा था, कल का आपका गाना सुना बहुत ही अच्छा था।' तो पिताजी ने कहा कल मेरा 'ब्रॉडकास्ट' नहीं था। मेरा बेटा गा रहा था।' तो उन्होंने कहा 'अच्छा, आपका बेटा गा रहा था, एकदम आपके जैसे गा रहा था, बहुत अच्छा गा रहा था, मैंने तो अनाउंसमेंट नहीं सुनी तो मुझे ऐसा लगा कि आप ही गा रहे हो। तो इस बात को लेकर पिताजी बहुत गम्भीर हो गए। उन्होंने मुझे कहा कि तुम गा रहे हो, अच्छा गा रहे हो, मगर तुम्हारे गाने में 'तुम' कहां दिख रहे हो? तुम्हारे गाने में तो लोग 'मुझे' 'देखते हैं। तुम्हारे गाने में तो 'डी. वी. पलुस्कर' की याद आ रही है। तुम्हारे गाने में तुम दिखने चाहिए। फिर उन्होंने मुझसे कहा कि बड़े पेड़ के नीचे छोटा पेड़ फलता नहीं है। चाहे तुम कितना भी अच्छा कर लो लोगों को हमारी ही याद आएगी। तुम हमारे कुली बनकर रह जाओगे। महफिल में जाओगे तो हमें कंधे पर लेकर जाओगे और हमें ही सामने रखोगे। लोगों को 'हम' दिखाई देंगे। तुम कहां दिखाई दोगे। तो अपने मिजाज से, अपनी नजर से, अपने स्वभाव से अपनी गायकी विकसित करनी है। और यह मेरे साथ रहकर नहीं हो पाएगा। तो यह अच्छा मौका आया है, तुम जाओ, पर हमेशा के लिए जाओ, ऐसा बिल्कुल भी नहीं है। दो-चार साल वहां रहो। अपने आपको ढूंढो, अपनी गायकी, अपने 'एक्सप्रेशन', अपने 'इंटरप्रिटेशन' वो सब तैयार करो। तुम्हारे गाने में तुम दिखायी देने चाहिए। तो इसलिए जाओ। कितनी बड़ी बात उन्होंने कही। तो फिर हमने वहां अप्लाई कर दिया, इंटरव्यू हो गया, हमारा सिलेक्शन भी हो गया और जनवरी 1973 में प्रिंसिपल के पद पर राजस्थान संगीत संस्थान, गवर्मेंट म्यूजिक कॉलेज, जयपुर में, वहां हमने ज्वाइन कर लिया। उस समय हम राजस्थान शिक्षा विभाग के सबसे कम उम्र के प्रिंसिपल थे। किसी कॉलेज के प्रिंसिपल इतने कम उम्र के नहीं थे।

उस समय हम मात्र 28 वर्ष के थे। एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी थी हम पर। वहां पर जयपुर में संगीत की दृष्टि से कुछ नहीं था। हम जब वहां जा रहे थे तो सोच रहे थे कि जयपुर में जा रहे हैं, जयपुर का घराना है, 'जयपुर घराने' के लोग होंगे और इस तरह, नजदीक से उनकी गायकी सुनने को मिलेगी, हम उसका अध्ययन भी कर सकते हैं। पर मैं जिस अपेक्षा से वहां गया वहां पर वैसा कुछ भी नहीं था। जयपुर के लोगों को यह तक पता नहीं था कि ख्यालियों का कोई जयपुर घराना भी रहा है। जयपुर घराने की जब बात होती थी तो यही लोग जानते थे कि जयपुर 'कथक' का घराना है। तो नृत्य तो आकर्षित करता ही है, उसमें ज्यादा दृश्य भाग है और बाकी संगीत का भाग है तत्कार। जयपुर शैली जो है वो तत् कार प्रधान है, चक्कर खाओ, तीन चक्कर खाओ नौ चक्कर, फिर सत्ताईस। जैसे तिहाई होती है तो उस तरह की तिहाई। तो ऐसी तैयारी का जो कथक नृत्य है, वह है जयपुर घराने का। और उस समय दो ही घराने थे, अभी भी कथक का लखनऊ और जयपुर ये दो ही घराने हैं। लखनऊ में लास्य और अभिनय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्यादा दिखाते हैं और जयपुर घराने में तत्कार और तैयारी और सारा लयकारी का काम। तो वहां जाकर हमने बताया कि ख्यालियों का एक जयपुर घराना भी है। और फिर हमने मुंबई में जो जयपुर घराने के लोग थे, उनको एक-एक करके वहां बुलाया, वहा कार्यक्रम करवाए जयपुर में, और दिखाया कि यह जयपुर घराना है, यह ख्यालियों का जयपुर घराना है। तो यह सब गतिविधियां हमने वहां शुरु की और 'एडमिनिस्ट्रेशन' का अनुभव भी मिलता रहा।

हम लगभग साढ़े ग्यारह साल जयपुर में रहे। धीरे-धीरे जिस मकसद से हम जयपुर आए, तो अपनी गायकी की ओर भी ध्यान देने लगे कि हमारी गायकी कैसी होनी चाहिए? जिसमें हम दिखें, तो यह सब कैसे हो, तो सबसे पहले हमने हमारे घराने के जो राग हैं उसके अलावा दूसरे राग हैं उन पर भी ध्यान देना शुरु किया। हमारे घराने का जो राग वो तो हैं ही इसके अलावा जो दूसरे घराने के राग हैं वो भी हमने सीखे और गाए ताकि हमारी थोड़ी अलग गायकी लोगों के सामने आए। जो राग हमारे पिताजी ने नहीं गाए हैं, डी. वी. पलुस्कर जी ने भी नहीं गाए हैं, वो राग हमने गाना शुरु किया, क्योंकि वह हम अपनी तरह से गाएंगे। साथ ही बंदिशों की भी निर्मिति की। इस तरह हम अपनी बंदिशें गाने लगे। और एक अपनी 'आईडेंटिटी डिवलप' करने की कोशिश कर रहे थे। तो इस तरह पांच-छह साल हो गया, तो ऐसा लगा कि हम यहां रहते-रहते 'सैचुरेटिड' हो गये है और कुछ विशेष करने के लिए दिखाई नहीं दे रहा है। अब हमें वापस जाना चाहिए मुंबई। उसी बीच मुंबई यूनिवर्सिटी में एक पोस्ट निकल आई थी, तो हम वहां गए थे और बाकायदा इंटरव्यू भी दे आए थे। पर उस समय वहां कोई बात नहीं बन पाई। इसी बीच एक 'इण्डियन काउंसिल फार सोशल साइंस रिसर्च' संस्था है, इनकी सीनियर फैलोशिप निकली, क्योंकि एम. ए. में सोशियोलॉजी हमारा विषय था तो हमने सोचा क्यूं नहीं इस तरह का एक 'प्रोजेक्ट' बनाया जाए जो म्यूजिक और सोशियोलॉजी को साथ में बांधता हो। 'सोशियोम्यूजीकोलॉजी' या 'सोशल म्यूजिकोलॉजी' इस तरह का कुछ। हमारे सोशियोलॉजी डिपार्टमेंट के प्रोफेसर, ए.आर.देसाई, हैड ऑफ द डिपार्टमेंट थे, वह छुट्टियों में मुंबई आए थे, तो हमने उनसे बात की। वो बहुत ही विद्वान थे। उनके परिवार में भी संगीत था, उनकी एक कजन थी वो गाती थी। और पं. ओंकारनाथ ठाकुर, वे उनके घर में ठहरते थे। वो संगीत प्रेमी थे और संगीत की वजह से वे मुझे बहुत चाहते थे। तो हमने उनसे इस प्रोजेक्ट की बात की। उन्होंने कहा यह तो बहुत ही बढ़िया विषय है। तो म्युजिक को सोशियोलॉजी के साथ जोड़ो और सोशल आस्पेक्ट्स देखते हुए कार्य करो, यह बहुत ही बड़ा विषय है, उन्होंने काफी हमारी नजर खोल दी। उन्होंने 'इंडिकेट' किया कि संगीत और संगीतकार इनकी किस तरह की 'मूवमेंट' हो रही है, यह जो सारा शास्त्रीय संगीत हम कहते हैं, रागदारी संगीत, ख्याल गायन, तो यह सारा संगीत और संगीत के घराने उत्तर में जन्में हैं और वहां से दक्षिण में आ गए महाराष्ट्र में, और महाराष्ट्र का भी एक विशिष्ट इलाका है दक्षिण-पश्चिम महाराष्ट्र, जिसमें से प्रमुख मुंबई, तो यहां आ गये। मुम्बई उस समय एक नई-नई अरबन सिटी, विकसित हो रही थी। तो संगीतकारों को यहां आश्रय मिला।

दिल्ली का साम्राज्य जैसे ही बिखरना शुरु हो गया, तो यह जो संगीतकार थे दिल्ली और उसके दरबार के तो उनका आश्रय धीरे-धीरे बंद होना शुरु हो गया। तो वो वहां से चले दक्षिण की तरफ, सबसे पहले था ग्वालियर, ग्वालियर दरबार में उनको आश्रय मिला, तो ग्वालियर एक केन्द्र बना संगीत का। उसके बाद और नीचे आ गए तो इंदौर, देवास ये सब रियासतें, मराठी रियासतें थीं और इनके शासक संगीत प्रेमी थे। इसके बाद में और नीचे आओ तो बड़ौदा, और नीचे आओ तो महाराष्ट्र में। और महाराष्ट्र में जो कोल्हापुर है, मिरज है यहां संगीत की जमीन बहुत उपजाऊ थी। वहां के रियासतकार, राजे, छोटे-छोटे संस्थानिक, वो संगीतकारों को आश्रय देते थे। तो इस तरह सारे ख्याल घरानों के संगीतकार महाराष्ट्र में आ गए। यह एक सोशल मूवमेंट था। और महाराष्ट्र में उनको राजायाश्रय मिला,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिष्य मिले। लम्बी-चौड़ी शिष्य परंपरा हो गयी। और लोगों में उनको प्रतिष्ठा मिली, 'आडियंस' तैयार हो गई।

तो यह सब किस तरह से हुआ? यह जो 'सोशल मूवमेंट ऑफ म्यूजिक' इस पर रिसर्च करने का हमने सोचा और इसका एक प्रोजेक्ट हमने बनाया। पोस्ट डॉक्टरल रिसर्च फॉर द सीनियर फैलोसिप ऑफ इण्डियन काउंसिल फॉर सोशल साइंस रिसर्च (आई.सी.एस.एस.आर) और हमने प्रपोजल भेज दिया। प्रपोजल एक्सैप्ट हो गया, और हमें सीनियर फैलोशिप मिल गयी। फैलोशिप में यह प्रौविजन था कि आप किसी भी यूनिवर्सिटी में अपना रजिस्ट्रेशन कर सकते थे, एफीलिएशन कर सकते थे और अपना काम इंडिपैंडेटली करते रहो। क्योंकि पोस्ट डॉक्टरेट है तो आपको किसी विशिष्ट गाइड की भी जरूरत नहीं थी, रिसर्च कर लो और फिर थीसिस सबमिट कर लो। यह किसी डिग्री के लिए नहीं था, यह एक सिर्फ रिसर्च आपके और आपके विषय की प्रगति के लिए है। तो एफिलिएशन के लिए हमने मुंबई यूनिवर्सिटी चुना। तो 1982 में हम इस रिसर्च के तहत जयपुर से दो साल की 'विदाउट पे स्टडी लीव' लेकर मुंबई आ गए। परिवार जयपुर में रहता था। मुंबई से जयपुर आना जाना करते थे, क्योंकि हमें रिसर्च के लिए कई जगह जाना पड़ता था। उन्हीं दिनों दुर्भाग्यवश 1982 में अगस्त में हमने अपनी माताजी को खो दिया। हमारी माताजी चल बसी 18 अगस्त को। तो यह एक बहुत बड़ा आघात था। पिताजी एकदम अकेले हो गये। बस यही एक संतोष था कि उस वक्त हम उनके साथ थे। अब हम अपने परिवार को मुम्बई लाने की तैयारी करने लगे।

तभी संयोग से मुंबई यूनिवर्सिटी में हैड ऑफ द डिपार्टमेंट की पोस्ट खाली हो गयी, जो वहां काम करते थे डॉ. अशोक रानाडे वो दूसरी जगह चले गए। चूंकि हम मुंबई यूनिवर्सिटी से एफिलेशन लेकर रिसर्च कर रहे थे, और जिनके हस्ताक्षर से हमारे सारे ट्रैवलिंग के बिल पास होते थे, वो थे यूनिवर्सिटी के वायस चांसलर डॉ. जोशी। वे संगीत के बड़े प्रेमी थे। तो जब यह पोस्ट खाली हो गयी तो उन्होंने मुझे कहा कि यह पोस्ट खाली हो गई अब क्यों नहीं आते हो यहां पर। तो हमने कहा नेकी और पूछ-पूछ। यहां तो हम आना ही चाहते हैं। इधर रिसर्च का भी दो साल पूरा हो रहा था, काम भी काफी तैयार हो गया था। और जब उन्होंने हमसे पूछा क्यों नहीं आते तो हमने कहा हम तो तैयार है। फिर वो पोस्ट निकली और हमने उस पोस्ट के लिए अप्लाई किया। और हमारा इंटरव्यू हो गया। यह सब पिताजी के सामने चल रहा था और पिताजी को उम्मीद हो गई थी कि यह वापस आ रहा है, लेकिन फिर भी दुर्भाग्यवश मेरे मुम्बई आने से पूर्व ही 1984 में 1 अप्रैल को, गुड़ीपाड़वा के दिन हमारे पिताजी चल बसे। संयोगवश मैं उस समय मुम्बई में था व उनके साथ था। उनके देहावसान के एक माह बाद ही मई माह में हमारा सेलैक्शन हो गया और हमारा अपॉइंटमेंट लैटर मिल गया, हैड ऑफ द डिपार्टमेंट, मुंबई यूनिवर्सिटी के पद का। जयपुर से रिलीव होने में थोड़ी सी दिक्कतें आ रही थीं, जिसके चलते 19 मई का हमारा अपॉइंटमेंट आर्डर निकला था, और हमने 30 अगस्त को यहां ज्वॉइन किया। इतना लम्बा टाइम हो गया वहां जयपुर में कुछ अड़चने आ गई थी, स्टडी लीव के बाद हमें वापस ज्वॉइन करना पड़ा, और फिर कैसे इतनी जल्दी रिलीव करें इत्यादि। पर इस बीच मुम्बई यूनिवर्सिटी के वाईस चांसलर डॉ. एस. जोशी ने हमें मदद की व आखिरकार जयपुर से रिलीव होकर 30 अगस्त को मुंबई यूनिवर्सिटी में ज्वॉइन कर लिया। तो इस तरह से हम वापस मुंबई आ गये। अगस्त 1984 से हमारे जीवन की एक नयी ईनिंग शुरु हुई विश्वविद्यालय के संगीत विभाग के अध्यक्ष के पद पर।

सन् 1969 में मुंबई यूनिवर्सिटी में संगीत विषय की शुरुआत हुई, और यह शुरुआत हुई 'म्यूजिक सेंटर' नाम से। उसमें अंडर ग्रैजुएट, पोस्ट ग्रैजुएट यह सब क्लासेस नहीं थीं, म्यूजिक सैंटर में दो साल का डिप्लोमा कोर्स था। उस समय जिनकी प्रेरणा से मुंबई यूनिवर्सिटी में संगीत विषय शुरु हुआ, उनके मन में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह था कि हम यूनिवर्सिटी में घरानेदार संगीत की शिक्षा देंगे, और इसी उद्देश्य से यह कोर्स शुरु किया गया। जैसा कि मैंने बताया कि जितने प्रमुख घरानों के जन्म स्थान अगर उत्तर भारत में हैं तब भी यह सारे प्रमुख घराने कालांतर से महाराष्ट्र में आये और मुंबई से उनका बहुत अच्छा संपर्क भी रहा। क्योंकि उन दिनों मुंबई एक फाइनेंशल सैंटर के रूप में उभर रहा था, यहां पैसा था, और जब पैसा होता है तो उसको खर्च करने के लिए अलग-अलग मार्ग होते हैं, और उसमें से एक था संगीत पर खर्चा करना। संगीत का रसास्वादन, संगीत का अध्ययन, संगीत की ट्यूशन। अच्छे संगीत शिक्षक की अच्छी आमदनी होती थी। घरानेदार तालीम विद्यार्थियों को मिले और वह भी ऐसी मान्यता प्राप्त संस्था मतलब कि यूनिवर्सिटी के माध्यम से मिले, तो इसकी मान्यता और एक 'प्रैस्डीज' अलग ही होगी। तो इस वजह से इस यूनिवर्सिटी में घरानेदार संगीत शिक्षा देने के उद्देश्य से दो साल का डिप्लोमा कोर्स शुरु किया गया। और इस डिप्लोमा कोर्स को सिखाने के लिए इन घरानों के जो विशिष्ट, उच्च दर्जे के घरानेदार गायक थे उनको निमंत्रित किया गया। जैसे कि यूनिवर्सिटी में रूल्स एण्ड क्वालिफिकेशन के तहत विज्ञापन निकलती है, प्रार्थी अप्लाई करते हैं, फिर उनका इंटरव्यू होता है, सलेक्शन होता है, तो यह सारा जो सिस्टम होता है उसे एक तरफ कर दिया गया। यह सिस्टम के बाहर की व्यवस्था थी। उनको एक मानदेय के रूप में हर महीने एक मानधन 'ऑफर' किया जाता था। तो इस तरह घरानेदार तालीम का यह दो साल का कोर्स 1969 में शुरु किया गया। उस समय विभाग में ग्वालियर घराने के पं. गजाननराव जोशी, जयपुर घराने के पंडित निवृत्तिराव सरनाईक, किराना घराने के पंडित फिरोज दस्तूर, आगरा घराने के पंडित गोविंदराव अग्नि, ऐसे घराने के बड़े-बड़े प्रतिनिधि कलाकारों को निमंत्रित किया गया। और उनके साथ विद्यार्थी आगे बढ़ने लगे। बाद में पं. निवृतराव सरनाईक कलकत्ता चले गए, संगीत रिसर्च अकैडमी में तो उनकी जगह पर जयपुर घराने के पंडित रत्नाकर पई को निमंत्रित किया गया।

शुरुआत में घरानेदार गायकी सिखाने के उद्देश्य से यह 'म्यूजिक सैंटर' यूनिवर्सिटी में शुरु किया गया था, 1969 में। उसके बाद 1978 में यह निर्णय किया गया कि अब इस संगीत केन्द्र को बाकायदा एक डिपार्टमेंट बनाकर यूनिवर्सिटी के मेन स्ट्रीम में लाया जाये। इसका मतलब इसका तीन वर्ष का डिग्री कोर्स बनेगा ग्रैजुएशन का, वह डिग्री दी जायेगी। तो 1978 में संगीत केन्द्र को रूपांतरित करके संगीत विभाग शुरु किया गया। 1984 में जब हमने ज्वॉइन किया, हमने देखा कि वहां एकमात्र गायन ही विषय था और जिसमें घराने होते थे जैसे ग्वालियर, जयपुर, आगरा, किराना और फिर उसी को लेकर एक थ्री इयर डिग्री कोर्स बनाया गया था। जिसमें परीक्षा होती थी व डिग्री दी जाती थी। पर विषय केवल गायन था। संगीत शिक्षा को व्यापक रूप देने के लिए हमने इस विभाग में नए विषय जोड़ना शुरु किया जैसे गायन के साथ हमने वाद्य में सितार व तबला विषय शुरु किया। गायन के साथ डिप्लोमा में सबसे पहले कुछ विषयों के सर्टिफिकेट कोर्स शुरु किए। वे विषय थे 'ग्रुप सिंगिग', 'कोरल म्यूजिक', 'लाइट म्यूजिक' इन विषयों में हमने सर्टिफिकेट कोर्स शुरु किए। तो इसमें ज्यादा से ज्यादा विद्यार्थी आ सकते थे। सहभाग कर सकते थे। संगीत की उनको प्रारम्भिक जानकारी मिल सकती थी। राग क्या है, रागों के स्वर क्या हैं, बंदिश क्या है? और इस तरह से उनकी इसमें रुचि पैदा करके फिर यही विद्यार्थी शास्त्रीय संगीत के कोर्स करने के लिए हमें उपलब्ध हो सकते थे। तो इस तरह से यह शुरु किया गया, और प्रसन्नता की बात है कि ये कोर्सेज बड़े अच्छे चलने लगे। उस समय अच्छी बात यह हुई थी कि 'म्यूजिक सेंटर' की जैसे ही यूनिवर्सिटी में शुरुआत हुई तो संगीत विषय के अध्यापन के साथ एक अच्छा रिकॉर्डिंग स्टूडियो बनाकर केन्द्र के साथ जोड़ दिया गया था। उद्देश्य यह था कि जो विद्यार्थी अध्ययन करते थे तो उनकी रिकॉर्डिंग की जाए, जैसे एक फोटोग्राफ होता है, आईना होता है। फिर जैसे-जैसे विद्यार्थियों की प्रगति होती जाए उनकी रिकॉर्डिंग उनको ही सुना दिया जाये। पहले आप ऐसे थे। छह महीने के बाद आपकी इतनी प्रगति हुई, और फिर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साल भर के बाद में आपकी यह प्रगति हुई है। तो इस तरह का जो 'ग्रेडिड डेवलेपमेंट' होता है उसका एक प्रमाण उनको दिया जाता था, रिकॉर्डिंग के जरिये। और उसके साथ-साथ अच्छे-अच्छे जो रिकॉर्ड्स उपलब्ध थे, अच्छे-अच्छे गायकों, कलाकारों के, वो भी विद्यार्थियों को सुनवाए जाते थे, कि देखिए आप जिस घराने की तालीम ले रहे हैं, वो तो है ही, पर अन्य कलाकारों को भी सुनो। तो इस तरह से शिक्षा में एक चतुरंग पद्धति अपनाई गई। चतुरंग यानि सभी तरह से उनको शिक्षा प्रदान कराई जाती थी। अब एक समस्या थी, कि, यह रिकॉर्डिंग स्टूडियो तो 1969 में शुरु किया गया था। रिकॉर्डिंग स्टूडियो के लिए जो मशीने खरीदी गई थी बड़ी ही टॉप ऑफ द लाइन की थीं। पर धीरे-धीरे टैक्नॉलौजी तो चेंज होती है, तो समय-समय पर मशीनें बदलने की आवश्यकता होने लगी। ये बहुत मुश्किल होता है इन सब के लिए फंड्स चाहिए होता है। फंड्स कहां से आए? यह एक बड़ी समस्या थी। तो हमने सबसे पहले सोचा कि स्टूडियो का जो एरिया था उसको बढ़ाया जाए। एक कमरा और बढ़ा दिया जाए व मशीनें नई लाएं, तो यह सब करने का जो सारा खर्चा हुआ, तो यूनिवर्सिटी में लोगों ने पूछा कि इतना खर्चा होगा, इसे आप कैसे औचित्य पूर्ण साबित करेंगे? खर्चा तो बहुत ज्यादा है। हमने विश्वविद्यालय के अधिकारियों को, विशेष कर वित्त विभाग को कहा कि आप हमें जो पैसा दे रहे हैं उच्चीकृत करने के लिए एक तरह से निवेश समझकर हमें दे दीजिए। और हम इसे राजस्व करके लौटाएंगे। इसके लिए हमने एक प्लान बनाया। हमने देखा कि जब हमारे विभाग को स्टूडियों की जरूरत होती है, उसके बाद बाकी के समय में स्टूडियो खाली रहता था। यदि यूनिवर्सिटी से परमिशन लेकर इस स्टूडियो को हम कमर्शियल रिकॉर्डिंग के लिए हायरआउट करेंगे, किराये पर दे देंगे तो हमें इससे आमदनी हो जायेगी। और हमने जो 'लोन' यूनिवर्सिटी से लिया वो भी चुकता हो जायेगा। हमें इस तरह की परमीशन मिल गई। हमने साथ ही विद्यार्थियों के लिए साउंड रिकॉर्डिंग एण्ड प्रॉडक्शन का एक नया कोर्स भी शुरु किया। यह कोर्स तो टैक्नीकल था पर उसके पीछे संगीत की जानकारी और संगीत का होना बहुत जरूरी है। तो यह कोर्स हमने संगीत के विद्यार्थियों के लिए शुरु किया और इसको ऐसा रिस्पांम्स मिला कि हमें इस कोर्स के लिए 'वेटिंग लिस्ट' बनानी पड़ गई। हमारे छह-छह महीने के कोर्स थे। तो इस तरह से हमने संगीत विभाग के चहु मुखी प्रगति के लिए प्रयास किए। और इसका हमें अच्छा फल मिलना शुरु हो गया। विद्यार्थियों की संख्या बढ़ गई। और यूनिवर्सिटी में एक संगीत विभाग होने से, यूनिवर्सिटी के कार्यक्रमों में जैसे यूथ फेस्टिवल इत्यादि में हमारे संगीत विभाग के बच्चे बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने लगे। हमने यूनिवर्सिटी ऐंथम बनाया, संस्कृत में बनवा लिया 'इदम् सुंदरम् मंदिरम् शारदायाम् मुंबापुरी विश्वविद्यालय'। इसकी एक अच्छी तर्ज बना ली। तो यूनिवर्सिटी के हर कार्यक्रम में जैसे कन्वोकेशन इत्यादि में, यह गीत हमारे विद्यार्थी गाते थे। अन्य शैक्षणिक गतिविधियों में हमने सैमिनार शुरु किए। उन दिनों इण्डियन म्यूजिकॉलौजी एक सोसाइटी थी उनका एक जर्नल चलता था तो उनकी सहायता से हमने हर वर्ष अकैडमिक एक सेमिनार करना प्रारंभ कर दिया। मुंबई यूनिवर्सिटी संगीत विभाग और इण्डियन म्यूजिकोलॉजी सोसायटी के तहत पहला सैमिनार 1987 में हुआ। अनेक विषयों पर वर्षों तक हमने सैमिनार किए। बाद में यह सैमिनार का संचालन संगीत रिसर्च अकैडमिक वैस्टर्न चैप्टर की तरफ से पं. अरविंद पारिख ने अपने हाथ मे ले लिया, और आज भी इतने वर्षों के बाद भी यह सैमिनार चलते हैं। यूनिवर्सिटी उसमें सहयोगी रूप से उनके साथ होती रही। तो इस तरह से मुम्बई यूनिवर्सिटी डिपार्टमेंट में आकर शैक्षणिक गतिविधियों की तरफ मैंने काफी ध्यान दिया।

संगीत एक परफार्मिंग आर्ट है, उसका प्रमुख उद्देश्य है परफॉरमेंस। मेरी तालीम घरानेदार पद्धति में हुई। और हम स्वयं को महफिली कलाकार के रूप में ही देखते रहे हैं। दूसरी गतिविधियां जब बढ़ रही थी, तो उसका भी हमारा अनुभव बढ़ता रहा। और उसमें भी हमारी एक पहचान बननी शुरु हो गई। फिर संगीत की संस्थाओं के 'एडमिनिस्ट्रेटर' के रूप मे हमारी पहचान बनने लगी। साथ में हम जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अलग-अलग तरह के सैमिनार आयोजन करते थे उनके विषयों के निर्धारण करना, उनके उपविषय बनाना, उसमें क्या-क्या स्कोप हैं इस तरह का निर्धारण करना। कुछ की नोट्स है जो हमें देने पड़ें तो उसका अभ्यास करना। तो प्रथम तो मेरी पहचान है एक परफॉर्मिंग आर्टिस्ट की तो उसी तरह से सोच-विचार करता रहा कि किस तरह से हम हमारे गाने में प्रगति कर सकते हैं। अन्य-अन्य हमारे अनुभव उनका इंटरप्रिटेशन, रागों की सोच, बंदिशों की वैरायटी इत्यादि ये सारी बातों का विचार एक परफॉर्मर के तौर से करते गए। एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ म्यूजिक इंस्टीट्यूशन के लिए भी हम पहचान बना पाए।

म्यूजिक इंस्टीट्यूशन भी अलग-अलग तरह के होते हैं। उनकी डिमांड अलग-अलग तरह की होती है, उनका दैनिक क्रम अलग-अलग तरह से होता है, विद्यार्थी अलग-अलग अपेक्षाओं से आते हैं, इसमें प्रत्येक का 'एडमिनिस्ट्रेशन' अलग तरह से होता है। म्यूजिकोलॉजी में, यद्यपि मैं अपने आपको एक म्यूजिकोलॉजिस्ट नहीं समझता हूं, फिर भी हमने प्रायोगिक शास्त्र पर काफी सोच-विचार किए हैं, अलग-अलग विषयों पर हमने लेख लिखे हैं। अलग-अलग सैमिनार में हमने शिरकत की है, पेपर पढ़े हैं। पी.एचडी. के विद्यार्थियों को गाईड किया है। उस रूप में भी हमारी पहचान बनी 'एज ए म्यूजिक थिंकर ऐजुकेशनिस्ट'। फिर जब हम सिखाते हैं तो अलग-अलग तरह के विद्यार्थी आते हैं, एकदम प्राथमिक स्तर से लेकर एकदम ऊंचे परफॉर्मर के स्तर तक। तो प्रारम्भिक विद्यार्थियों को कैसे ग्रूम करना चाहिए, परफॉर्मेंस के लिए कैसे तैयार करना है तो एक 'गुरु' के रूप में, हमारी पहचान बन गयी। और आज भी मैं यह समझता हूं कि मैं एक शिक्षार्थी ही हूं। जहां-जहां नई-नई बातें देखने को मिलती है, उनको मैं देखने की कोशिश करता हूं, समझने की कोशिश करता हूं, सीखने की कोशिश करता हूं। यही मेरे जीवन का उद्देश्य रहा है। हर अनुभव हमें कुछ सिखाता है।

तो इसी तरह हमने मूंबई यूनिवर्सिटी के संगीत विभाग के प्रमुख के पद पर लगभग 20 वर्षों तक कार्य किया, हमारा रिटायरमेंट 2004 का था। उससे कुछ समय पहले एक प्रस्ताव आया वो यूं कि लखनऊ में जो एक पुरानी संस्था है, भातखण्डे कॉलेज ऑफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक। इस पुरानी संस्था को अपग्रेड करके यूनिवर्सिटी का दर्जा दिया गया था। उसकी वाईस चांसलर चयन समिति ने हमारा चयन किया प्रथम वाईस चांसलर के रूप में। इस संस्था का इतिहास इस तरह से रहा है कि पं. विष्णु नारायण भातखण्डे जी ने 1926 में इस संस्था की लखनऊ में स्थापना की। उस समय ऐसा था कि संगीत संस्थाओ की स्थापना से और संगीत संस्थाओ के माध्यम से समाज में संगीत का प्रचार-प्रसार करने की गतिविधियां जोरों पर थी। एक तरफ गुरुकुल या गुरु शिष्य परंपरा में संगीत शिक्षा और दूसरी तरफ संगीत की संस्थाएं व उनके माध्यम से संगीत का प्रचार-प्रसार। पर दोनों पद्धतियों में अंतर जरूर था। शुरुआत में ऐसा सोचा गया और देखा गया कि दोनों गतिविधियां एक दूसरे की विरोधी हैं। मतलब गुरुकुल में जो गुरु थे वो संस्थाओं को कहते थे कि यह क्या संस्थाएं हैं। सामने किताब रखने से क्या संगीत आता है? अच्छी तरह से गाने के लिए गुरु का मार्गदर्शन चाहिए, गुरु के पास बैठो गुरु के चरणों में सीखो, गुरु सेवा करो, और ज्ञान हासिल करो। तब आप गाने की स्थिति में होते हैं। उनकी बात भी सही थी। लेकिन ऐसा देखा गया कि लोगों की अपेक्षा क्या है। जो लोग संगीत सीखते है वह सब के सब न तो परफार्मिंग आर्टिस्ट बनना चाहते हैं और न ही बन सकते हैं। गुरुकुल के समय में भी गुरु के पास एक समय में चार-पांच विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे। लेकिन अगर दस-पन्द्रह साल का कार्यकाल देखिए, तो पन्द्रह साल मे अगर पन्द्रह विद्यार्थी भी आकर सीखे तो सारे के सारे कलाकार नहीं बनते। और उनमें से भी सफल मंचीय कलाकार तो विरले ही बनते हैं। हां जानकार जरूर बने, अच्छे से सिखा सकते हैं पर यह देखा गया कि सब के सब मंचीय कलाकार नहीं बने और न बनना चाहते हैं। ऐसा एक बड़ा विद्यार्थियों का वर्ग विकसित हो रहा था,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो आनंद के लिए, संगीत को हम समझ सके, शास्त्रीय संगीत में रागदारी संगीत को समझना चाहते हैं, आनंद लेना चाहते हैं और इसलिए सीखना चाहते हैं। तो समाज के मध्यम वर्ग से एक ऐसा बहुत बड़ा वर्ग आ गया था संगीत सीखने के लिए। तो इनके लिए एक स्ट्रक्चर्ड शिक्षण प्रणाली की आवश्यकता होने लगी। जिससे इन्हें संगीत के बारे में जानकारी मिले। हर कोई तानसेन नहीं बन सकता लेकिन एक तानसेन के पीछे सौ दो सौ कानसेन तो चाहिए सुनने के लिए जो उसकी कद्र करें। श्रोतावर्ग और जानकार श्रोतावर्ग उतना ही जरूरी है जितना कलाकार। तो इस तरह विभिन्न संस्थाओं का अलग-अलग रोल है। पं. विष्णुदिगम्बर पलुस्कर ने 1901 में लाहौर में गंधर्व महाविद्यालय की स्थापना की। और पं. विष्णुनारायण भातखण्डे ने भी संगीत संस्थाओं की स्थापनाओं पर जोर दिया। उस समय 'सर मैरिस' करके लखनऊ के गवर्नर थे। संगीत में उनकी रुचि थी। और वो संगीत की गतिविधियों को काफी प्रोत्साहन देते थे। तो उनकी सहायता से 1926 में लखनऊ में 'मैरिस कॉलेज ऑफ म्यूजिक' नाम से यह संस्था स्थापित हुई। और उसी साल में माधवराव सिंधिया, जो ग्वालियर के 'रूलर' थे उनकी सक्रिय सहायता से ग्वालियर में भी संस्था स्थापना हुई 'माधव म्यूजिक कॉलेज'। 'भातखण्डे कॉलेज ऑफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक' ये संस्था का नया नामकरण किया गया, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् शायद 1966 में। यह एक सरकारी संस्था थी। 2003 में इस संस्था को अपग्रेड करके 'यूनिवर्सिटी' का दर्जा दिया गया। और जब यूनिवर्सिटी का दर्जा दिया गया तो इसके वाइस चांसलर पद के लिए हमारे नाम पर विचार किया गया। और हमारा सलैक्शन किया गया। हमें उनका पत्र मिला कि आप आईये और ज्वॉइन कीजिए। क्योंकि हमारा रिटायरमेंट 2004 में था तो मुम्बई यूनिवर्सिटी से हमें अवकाश मिल गया और इस तरह से हम मुंबई से लखनऊ पहुंच गये। 5 फरवरी 2004 को भातखण्डे म्यूजिक इन्स्टीट्यूट डीम्ड यूनिवर्सिटी, इस संस्था के वाइस चांसलर के रूप में हमने वहां पदभार ग्रहण कर लिया। और इस तरह हमारी जिंदगी की एक तीसरी ईनिंग शुरु हो गई।

हिन्दुस्तान के सांगीतिक शैक्षणिक इतिहास में, पूरी एक म्यूजिक यूनिवर्सिटी करके यह पहली थी। क्योंकि इससे पहले जो यूनिवर्सिटी थी वो संगीत एवं ललित कला की है वो खैरागढ़ की है। खैरागढ़ में जो इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ रियासत के राजा उनकी बेटी इंदिरा के नाम पर यह बनी थी। इंदिरा बड़ी ही कला प्रेमी थी। पूरा परिवार को कला में रूचि थी। अल्पायु में ही इंदिरा का देहावसान हो गया। तो उनकी स्मृति में संगीत संस्था बनाई और संगीत संस्था के लिए अपना राजमहल दे दिया। और उस महल में संगीत संस्था की स्थापना की, उसको यूनिवर्सिटी लैवल पर इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय रखा गया। जब रियासत मिल गए इण्डियन यूनियन में तो इस लायबिलेटी को तत्कालीन मध्यप्रदेश सरकार ने अपने पास ले लिया। और वह एक सरकारी विश्वविद्यालय बन गया। उसका नाम इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय रखा गया। तो कला संगीत विश्वविद्यालय में संगीत एवं ललित कला का मिला-जुला विश्वविद्यालय था। लेकिन लखनऊ की संस्था भातखण्डे इंस्टीट्यूट ऑफ म्यूजिक वो सिर्फ संगीत की ही यूनिवर्सिटी थी। उसमें ललित कला नहीं था। तो संगीत की एकमात्र यूनिवर्सिटी के पहले वाइस चांसलर, के रूप में मैंने वहां कार्य किया। मुझे इस बात का गर्व है। दूसरी बात देखिये, हमारे यहां उत्तर भारतीय संगीत शिक्षण की दृष्टि से दो स्ट्रीम्स पायी जाती हैं, एक पलुस्कर परंपरा और दूसरी भातखण्डे परंपरा। तो हम तो पलुस्कर परंपरा के अंदर पले-बढे और हम भातखण्डे परंपरा की संस्था के शीर्ष स्थान पर पहुंचे। तो यह दोनों परंपराओं का एक तरह से मिलाप हो गया। तो हम बहुत ही प्रसन्न थे। और यह समझते थे कि यह एक बहुत ही बड़ी जिम्मेदारी आ गई है और इसे बखूबी निभाना चाहिए।

मेरे कार्य करने का सूत्र या ध्येय शुरु से ही यही रहा है कि मैं अपनी जो भी योग्यता है, जो भी अनुभव है, उसका, जिस संस्था के लिए हम काम कर रहे हैं, उस संस्था के लिए अधिकाधिक उपयोग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करूं? इससे वो संस्था भी आगे बढ़े। और इससे मेरा भी एनरिचमेंट होता रहे।

लखनऊ में स्थिति यह थी कि यह संस्था पहले भातखण्डे संगीत महाविद्यालय के रूप में कार्य करती थी यानि यह पहले एक म्यूजिक कॉलेज था। अब इसे 'यूनिवर्सिटी' का स्तर तो दे दिया गया था, लेकिन मैंने देखा कि कोई विशेष कार्य नहीं हो रहे थे। हालाँकि मैं यह समझता हूं कि यह एक स्वाभाविक बात ही थी। और साथ ही हर संस्था की तरह इस संस्था में भी कुछ अंतरप्रवाह थे, जिसे आजकल की भाषा में 'पॉलिटिक्स' कहते हैं, और कुछ ग्रुप्स ऐसे बने थे जो अपने-अपने हित के लिए कार्य करते थे। ये जरूरी नहीं कि संस्था का हित और उनका हित एक ही हो। क्योंकि हम सब मनुष्य हैं तो यह मान लेना चाहिए कि ऐसा तो होगा ही। और इसमें संस्था के हित को देखकर उसमें से रास्ता निकालकर संस्था को आगे ले जाना है। हमारे वहाँ आने पर एक नयी 'सिचुएशन' बन गयी। नये 'इक्वेशन' वनने शुरु हो गए। तो शुरु के कुछ दिन या कहें कि महीने मुझे यह सब 'ऐडजस्ट' करने में व देखने में लग गए। कि यहां कैसी स्थिति है? किस तरह के स्टाफ हैं? किस तरह के विद्यार्थी हैं? वो कैसे बैकग्राउंड से यहां पर आते हैं? और इनमें और अलग-अलग लोगों के अंतर्हित क्या हैं? उसका उद्देश्य क्या है? तो यह सारी चीजें देखने में मुझे कुछ समय लग गया। हमारी प्रायॉरिटी रही कि हम सभी को एक विश्वास दिलाकर ही आगे काम करें। एक परफार्मिंग आर्टिस्ट होने के नाते, एक कलाकार होने की वजह से हमारे नाम और काम से लोग पहले से ही परिचित थे। लेकिन एकदम से ऑल द वे फ्रॉम मुंबई, इस तरह संस्था में आ जाना और वाइस चांसलर के पद पर आसीन होना। वो कुछ लोगों को अच्छा नहीं लगा और शुरु से ही ऐसी कुछ गतिविधियां चलती रही मेरे विरोध में कि जैसे यह आए हैं वैसे ही उनको यहां से जल्दी से जल्दी वापिस भेज दिया जाए। पर मुझे अपने कुलाधिपति का पूरा विश्वास और सपोर्ट प्राप्त था। तो इस वजह से सारे विरोधों को लेकर हम चले और एक-एक विरोध को हमने शांत किया। कुछ लोग अच्छी तरह समझाने से शांत हो गए पर जो फिर भी विरोध करते रहे तो उनके लिए हमें कड़ी कार्यवाही करनी पड़ी। इस तरह से लगभग छह महीने बाद स्थिति थोड़ी अच्छी हो गई और हम हमारी योजना के अनुसार पूरी तरह से मन लगाकर कार्य करने लगे।

हमने देखा कि वहां दो तरह के पाठ्यक्रम चल रहे थे। विश्वविद्यालय के जो पाठ्यक्रम आवश्यक थे वो तो वहां चलाए गए करीबन दो साल ही हुए, लेकिन इस संस्था में पहले से जो कोर्स चले आ रहे थे वो थे डिप्लोमा कोर्स व सर्टिफिकेट कोर्स। जैसे फर्स्ट इयर जूनियर डिप्लोमा फिर सीनियर डिप्लोमा और फिर उसके बाद संगीत प्रभाकर, संगीत निपुण इस तरह के कोर्सिस थे। इन कोर्सस की परीक्षाएं संचालित करने वाली संस्था थी भातखण्डे संगीत विद्यापीठ। यह प्राइवेट संस्था थी। इस तरह की संस्थाएं हमारे देश में और भी हैं जैसे गंधर्व महाविद्यालय, प्रयाग संगीत समिति इत्यादि। तो जैसा मैंने कहा कि भातखण्डे संगीत महाविद्यालयी संस्था सरकारी महाविद्यालय बना तो उसके साथ-साथ या उससे भी पहले से भातखण्डे संगीत विद्यापीठ ये परीक्षा संपन्न करने वाली संस्था बनी। इस स्थिति को सबसे पहले ठीक करने के लिए सर्वप्रथम विश्वविद्यालय का एक परीक्षा विभाग अलग से बनाया गया। और उस परीक्षा विभाग से ही सारी परीक्षाएं, डिग्री कोर्स की परीक्षा और डिप्लोमा सर्टिफिकेट की परीक्षाएं संचालित होने लगीं।

संस्था की व्यवस्था में कुछ इस तरह बदलाव किया कि विश्वविद्यालय के दो भाग कर दिए, दो सेक्शन कर दिए हमने, एक यूनिवर्सिटी सैक्शन और दूसरा स्कूल सैक्शन। यूनिवर्सिटी सैक्शन के कोर्स थे थ्री इयर डिग्री कोर्स, पोस्ट ग्रैजुएट कोर्स और स्कूल सैक्शन के क्लासेस अलग थे जो कि पहले से चले आ रहे थे डिप्लोमा वगैरह और इनके दोनों के टाइमिंग भी हमने अलग कर दिए। विश्वविद्यालय की क्लासेज़, डिग्री कोर्स ग्रैजुएट, पोस्ट ग्रैजुएट के लिए सुबह का समय निर्धारित किया। स्टाफ में से जो लैक्चरर, रीडर,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थे इनको यूनिवर्सिटी सैक्शन में लगाया कि वो केवल यूनिवर्सिटी सैक्शन की ही क्लासिस लें। जूनियर टीचर्स को स्कूल सैक्शन में लगाया। और उसका समय शाम 4 बजे से कर दिया। कॉलेज में एडमिशन को देखते हुए हमने कई बदलाव किए। इस तरह विद्यार्थियों को कई नए 'फैसिलिटी' दी ताकि विद्यार्थियों के अध्ययन को मान्यता मिले और आगे का अगली कक्षा में जाने के लिए उनका रास्ता खुल जाए, उनको यूनिवर्सिटी डिग्री भी मिल सके। ये बड़ी अच्छी व्यवस्था रही। विश्वविद्यालय सैक्शन के और स्कूल सैक्शन के सभी विद्यार्थियों में इसका एक संतोष दिखायी दिया। और साथ में टीचर्स भी अपनी क्वालिफिकेशन और योग्यता के अनुसार कार्य करने लगे। को-कलीकुलर ऐक्टीविटी और दूसरे जो शॉर्ट-टर्म कोर्सेस, हमने मुम्बई में चलाये थे उनको हमने यहां भी शुरु किया। अलग-अलग विभाग बनाए गायन विभाग, वाद्य विभाग। अब वाद्य विभाग में 'स्वर वाद्य' व 'लय वाद्य' अलग-अलग कर दिये। नृत्य विभाग भी था। और इन सभी विभागों के विभागाध्यक्ष नियुक्त कर दिए। कहने का अर्थ ये कि एक व्यवस्थीकरण किया। और विभागाध्यक्षों के ऊपर पूरा विभाग चलाने की जिम्मेदारी डाल दी। तो इस तरह से एक यूनिवर्सिटी के लिए और उसके सेट-अप के लिए जैसा जरूरी था वैसा सैट-अप हमने वहां 'इन्ट्रोड्यूज' किया। संस्था में विद्यार्थियों की क्षमता को, टैलेंट को आउट लेट देने की दृष्टि से हमने कुछ ऐसी गतिविधियां भी शुरु की, कार्यक्रम शुरु किए, जिसमें विद्यार्थी अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। कुछ शॉर्ट टर्म कोर्सेस, लाइट म्यूजिक के कोर्स शुरु किए। तो उसमें बहुत सारे विद्यार्थी आने लगे। उनमें से जो टैलेंटिड विद्यार्थी थे उनको हम लाइट म्यूजिक की स्ट्रीम से रागदारी संगीत में लाते थे इससे हमारे विद्यार्थी बढ़ने लगे। हालांकि इस संगीत संस्थान को विद्यार्थियों की कमी कभी भी महसूस नहीं हुई वहां हजारों की संख्या में विद्यार्थी थे। ग्यारह सौ, बारह सौ, पन्द्रह सौ यहां तक मेरे रहते ये संख्या अठारह सौ तक पहुंच गयी थी।

इतने सारे कोर्सिस एवं विषय पढ़ाए जाते थे। इसलिए विद्यार्थियों की संख्या अधिक थी। उसमें भी शाम के स्कूल सैक्शन में शौकिया सीखने वाले बहुत सारे विद्यार्थी आते थे। पर सवाल यह था कि इतने सारे विद्यार्थियों को क्या हम अच्छी तरह से शिक्षा दे पा रहे थे? तो शैक्षणिक दृष्टि से उनका मूल्यांकन करना जरूरी था। विद्यार्थियों को क्या मिल रहा है? एक क्लास में बीस या तीस विद्यार्थी रहते हैं तो कितने तक विद्यार्थियों को एक शिक्षक संभाल पाता है। यह देखना भी जरूरी था। परन्तु एक विशेष बात जो हमारी दृष्टि में आई वो यह थी कि बहुत से विद्यार्थी ऐसे थे जो सिर्फ टाईम पास करने के उद्देश्य से एडमिशन लेते थे। संगीत सीखने में उनकी कोई रुचि नहीं थी। ऐसे नॉन सीरियस विद्यार्थी काफी आते थे। इस पर काफी विचार किया नजर दौड़ाई तो पाया कि इसका मूल कारण है कि यहां की फीस बहुत ही कम थी। सरकारी महाविद्यालय है तो शुरु में फीस कम ही थी यूनिवर्सिटी होने के बाद भी फीस स्ट्रक्चर ऐसा ही रहा, बदला नहीं। इसका हल खोजने की कोशिश की। तो सबसे पहले हमने फीस बढ़ा दी क्योंकि जो फीस दे सकते हैं उनको तो देनी ही चाहिए। तो यह देखकर हमने यहां नया 'फीस स्ट्रक्चर' लागू किया। जैसे कि अपेक्षा थी शुरुआत में ही विरोध हो गया, बहुत ही अखबारबाजी भी हो गई कि इन्होंने आते ही फीस बढ़ा दी। हम तो संगीत सीखना चाहते हैं पर कैसे सीखें, फीस इतनी बढ़ा दी है। हम चाहते हैं सीखना पर इनकी वजह से हम क्लास नहीं ले पा रहे हैं वगैरह वगैरह। मतलब पूरी बात को थोड़ा सा भावनात्मक रुख देने का प्रयास किया गया। बहुत सारी कम्प्लेंट भी हमारे खिलाफ कर दी गई कि इन्होंने मनमानी शुरु कर दी है। फिर गवर्मेंट की ओर से चिट्ठियां आने लगी कि आपने क्यों ऐसा किया, कैसे किया? हमने कहा कि ये एक 'ऑटोनोमस इंस्टीट्यूशन' है। यह अधिकार हमारे पास है उस अधिकार का हमने उपयोग किया। साथ में यह भी कहा कि जो दे सकते हैं ये फीस उन्हें देना चाहिए और जो नहीं दे सकते हैं उनके लिए हमने फ्रीशिप और स्कॉलरशिप इत्यादि का प्रावधान किया है। तब जाकर सब शांत हो गया। तो इस तरह एक अच्छी बात हुई कि अपने विश्वविद्यालय की इनकम बढ़ गयी। इस पैसे से हमने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने विद्यार्थियों के लिए उपयोगी गतिविधियां प्रारम्भ की। इस संस्था के भवन में कोई सभागार नहीं था तो सर्वप्रथम एक स्थान नियत कर हमने एक बड़े हॉल का निर्माण करवाया जहां भारतीय बैठक शैली में कार्यक्रम किये जा सकें। पूरी तरह साउण्ड व लाईट सिस्टम से सुसज्जित इस हॉल का नाम हमने दिवंगत गायक पंडित रातंजनकर के नाम से रखा 'सुजान सभागृह'। रातंजनकरजी भातखण्डे जी के शिष्य थे व लम्बे समय तक इस संस्था के प्राधानाचार्य रहे थे। इस सभागृह में समय-समय पर बाहर से ऐक्सपर्ट लोगों को बुलाकर 'लैक्चर डैमोन्सट्रेशन' व वर्कशॉप्स करना भी शुरु किया। हमारा जो मुंबई का अनुभव था उसी के चलते सभागार से संलग्न एक रिकॉर्डिंग स्टूडियो स्थापित किया गया। और रिकॉर्डिंग की सुविधा उपलब्ध कराई गई। जो-जो प्रोग्राम होते थे उन सबकी रिकॉर्डिंग करके उनकी एक अरकाइवल लाइब्रेरी, साउंड लाइब्रेरी, हमने शुरु की। किताबों की लाइब्रेरी तो थी ही। लेकिन संगीत का विश्वविद्यालय होने के नाते एक साउंड लाइब्रेरी, अरकाइवल लाइब्रेरी की बहुत महत्ता थी वह हमने शुरु की।

यहां हर वर्ष 5 सितम्बर को भातखण्डे जयंती महोत्सव किया जाता था। अभी भी होता है। उसमें बाहर के कई कलाकार बुलाए जाते थे। तो हमने कलाकारों को निवेदन किया कि आप आते हैं आपका कार्यक्रम तो एक दिन का होता है शाम का, और कार्यक्रम करके आप चले जाते हैं। लेकिन हम आपसे अनुरोध करेंगे कि आप दो दिन का समय निकालकर यहां आएं। एक दिन तो आपका कार्यक्रम रहेगा और फिर दूसरे दिन सवेरे के समय हम आपको संस्था में बुलाएंगे, हमारे शिक्षकों और विद्यार्थियों के साथ आपको रूबरू करेंगे। और उस समय आप अपने अनुभव बताइए, शेयर कीजिये विद्यार्थियों के साथ कि आपने कैसे सीखा, आपके गुरु कैसे थे, एक शिक्षार्थी रूप में आपकी क्या दिक्कतें थी, ये जीवन के अनुभव विद्यार्थियों के साथ शेयर करें। और जब आप गाते हैं तो आपके पीछे क्या भावना रहती है? किस तरह के भाव आप संप्रेषित करते हैं आपके कार्यक्रम और परफॅर्मेंस के माध्यम से। तो इस तरह से एक कलाकार के रूप में, एक विद्यार्थी के रूप में, एक गुरु के रूप में अपना अनुभव, यह सब साझा करें। जब यह इंटरैक्टिव सैशन हुए तो यह गतिविधि इतनी विद्यार्थी प्रिय रही कि कभी-कभी मुख्य कार्यक्रमों से उनका यह विद्यार्थियों के साथ का सेशन ज्यादा पॉपुलर हुआ, विद्यार्थी प्रिय हुआ। और उसमें ज्यादा ग्रहण करने को मिला। मेरे कार्यकाल के दौरान वहां तबले में सर्वश्री पंडित किशन महाराज, पंडित सुरेश तलवलकर, पंडित सुधीर माईणकर। गायन में पंडित विनायक तोरवी, विदूषी अश्विनी भिड़े, पं. संघमेश्वर गुरव। वादन में पंडित उमाशंकर मिश्र, पंडित विश्वमोहन भट्ट इत्यादि सुनामधन्य कलाकारों को हमने बुलवाया। इसी तरह गुरु-पूर्णिमा के अवसर पर गुरु वन्दना कार्यक्रम शुरु किया। जिसके अन्तर्गत एक मान्यवर गुरु को सम्मानित कर उनके व उनके शिष्यों के कार्यक्रम किए गए। जिससे गुरु शिष्य परंपरा का दिग्दर्शन हो। तो इस तरह की शिक्षण संस्था में गुरु शिष्य परंपरा की जानकारी भी मिले इसके लिए अलग-अलग गतिविधियां हमने वहां शुरु की।

हमने देखा कि म्यूजिक थैरेपी, यह नया विषय आ रहा है तो इस विषय के विशेषज्ञों में श्री शशांक कट्टी को हमने मुम्बई से बुलाया। उनके साथ वर्कशॉप किए और साथ में मेडिकल कॉलेज व हॉस्पिटल से डॉक्टर्स को बुलावाया। उनके हैड ऑफ द डिपार्टमेंट को भी हमने निमंत्रित किया और उनके साथ चर्चाएं और वर्कशॉप की, कि अगर 'म्यूजिक थैरेपी' होती है तो वे इसे किस दृष्टि से वे देखते हैं? चिकित्सक के तौर पर क्या अनुभव है? आयुर्वेदाचार्यों को भी बुलाया, कि उनके क्या अनुभव हैं? म्यूजिक थैरेपी एक सबजेक्ट की तरह विकसित हो सकता है, क्या? जिसमें हमारे संगीत के विद्यार्थियों को आगे करिअर बनाने के लिए कुछ रास्ता हो। तो यह भी हमने एक पहल शुरु की। बहुत चर्चा रही इसकी, बड़ी सराही गई। फिर लखनऊ शहर की अन्य संस्थाओं के साथ मिलकर साझा संगीत समारोह करना, कॉमन प्रोग्राम करना, रामकृष्ण आश्रम का मठ हैं वहां पर, उनके मठ के अधिपति वो बहुत संगीत के प्रेमी हैं तो उनके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साथ मिलकर कुछ ऐसे व्याख्यान प्रदर्शन किए, कि संगीत और दर्शन का आपसी क्या संवंध है, इस विषय पर चर्चा की गई। इस तरह संगीत की एक संस्था में जो-जो कार्य होने चाहिए, जैसे होने चाहिए वो करने के हम प्रयत्नशील रहे। इसमें विद्यार्थियों, शिक्षकगण व लखनऊ की संगीत प्रेमी जनता से हमें काफी सहयोग मिला। और हमारे जो चांसलर थे, गवर्नर थे उनका हमें बहुत ही सपोर्ट रहा। स्थानीय जो कुछ विरोधी तत्व थे वो भी धीरे-धीरे हमारे अनुकूल हो गए। लखनऊ में कार्य करते-करते जब लगभग साढ़े तीन साल हो गए इसी बीच में एकदम से कोलकाता में आई.टी.सी. संगीत रिसर्च अकैडमी उसके एग्जिक्यूटिव डायरेक्टर पद पर कार्य करने के लिए हमें न्यौता आया। तो हम थोड़ी सी दुविधा में हो गए कि क्या किया जाये। लखनऊ का कार्य चौलेंजिंग था और इसमें हम काफी सफल हो रहे थे। पर एक रिएलिटी यह भी थी कि वहां के वाइस चांसलर की पद का समय पांच वर्ष का था और हमने साढ़े तीन साल पूरे कर लिए थे। हमारा डेढ़ साल का टर्म ही बाकी था तो उसके बाद क्या? उस समय उस पोस्ट को सेकेण्ड टर्म मिलने का, एक्सटेंशन का प्रावधान नहीं था। तो उस तरह से आगे को देखते हुए हमने एक निर्णय किया कि चलो एक ऑफर आया है, संगीत रिसर्च अकेडमी से, उसका भी बड़ा नाम था, और यह संस्था जो है अपने स्वरूप की एक अनूठी और एकमात्र संस्था है, गुरु शिष्य परंपरा पर आधारित और टोटली प्रैक्टिकल, परफॉरमेंस ओरिएंटेड। जिसको आई.टी.सी. जैसे मल्टीनेशनल कंपनी का पूरा-पूरा आर्थिक बैक-अप है। आप कुछ करना चाहो तो फण्ड्स की कमी बिल्कुल भी नहीं है। आप योजना बनाइए। अच्छी योजना है तो उसकी स्वीकृति मिलेगी। वरना सरकारी संस्थानों में बजट अप्रूवल के लिए एक लम्बा प्रोसेस होता है। आई.टी.सी. में अच्छे-अच्छे गुरु थे, काफी नामचीन कलाकार थे उनके साथ काम करने का एक विशेष अनुभव रहेगा। और इन सारी चीजों को सोचने के बाद हमने वहां जाने का मन बना लिया। हमने हमारे गवर्नर के साथ यह सारी बातें 'डिस्कस' की। क्योंकि उनका मुझ पर बहुत-बहुत ज्यादा विश्वास था। वह चाहते थे कि मैं यहीं रहूं और यहां इसी तरह काम करता रहूं। और इस संस्था को और आगे बढ़ाऊं। लेकिन सारी चर्चाएं और विचार-विमर्श करके, और मेरे विचार सुनकर उन्होंने मुझे यही कहा कि ठीक है जो आपने सोचा है। और हमने वहां से अपना त्याग-पत्र दे दिया और आई.टी.सी. रिसर्च अकेडमी के एक्जीक्यूटिव डायरेक्टर पद पर सितंवर 2007 में हमने ज्वाइन किया। तो यह हमारे सांगीतिक जीवन का एक चौथा अध्याय शुरु हो गया।

इस तरह यूनिवर्सिटी से कंपैरेटिवली छोटे दायरे में हम चले गये। छोटा क्योंकि परफॉरमेंस व गुरु शिष्य परंपरा, उसी दायरे में वह संस्था थी। लेकिन इसमें संभावनाएं बहुत ज्यादा थी। यहां पर कार्य करने वाले सभी गुरुओं से परफार्मिंग आर्टिस्ट होने के नाते हम पहले से परिचित थे, सब अपने ही थे। इसलिए कार्य करने का एक बड़ा अच्छा माहौल मिला। लेकिन उसके जो उद्देश्य थे तो वो अलग थे। यद्यपि वहां गुरु लोग अपने तरीके से सिखाते थे। उनको यह बताया जाना कि आपको यह सिखाना है, ऐसे सिखाना है, यह वहां पर अपेक्षित नहीं था। यूनिवर्सिटी में म्यूजिक डिपार्टमेंट कोर्सेस बने हुए होते हैं। उनके ऑब्जेक्टिव बने हुए हैं और निश्चित तरीका है कि इस-इस तरह से इन कोर्सेस की पढ़ाई होगी। सैमेस्टर के बाद यह टेस्ट होंगे, इस तरह प्रश्न पूछे जाएंगे। किन्तु संगीत रिसर्च अकैडमी एक गुरु शिष्य परंपरा या गुरु-शिष्य प्रधान पद्धिति वाली संस्था है। वहां पर आप गुरु को यह नहीं कह सकते कि आप यह-यह सिखाइये और ऐसे-ऐसे सिखाइये। वहां गुरु को पूरी स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। क्योंकि वह घरानेदार गुरु हैं। घराने में उन्होंने जो-जो, जैसे-जैसे सीखा उसी परंपरा को आगे ले जाने के लिए उनको नियुक्त किया गया है, और उसी परंपरा में शिष्य तैयार करने के लिए गुरु का और विद्यार्थियों का भी उसी के अनुसार चुनाव किया जाता है। पहले ऑडिशंस होते हैं फिर उनको सेलेक्ट किया जाता है। फिर चर्चा होती है कि उनमें कौन सी खासियत है, किस तरह की आवाज है, किस तरह का उनका शिक्षण है, यह शिष्य इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घराने में जाने के योग्य है और इसी तरह से उनको वर्गीकृत किया जाता है। तो इसमें शिष्य को क्या सिखाया जाये, कैसे सिखाया जाये, इसके लिए गुरु को पूरी स्वतंत्रता दी जाती थी। एडमिशन होने के छह महीने के बाद उनको गाने के लिए मौका दिया जाता है, पीरियाडिकल टैस्ट होते हैं, उनका ग्रेडेशन होता है फर्स्ट ग्रेड, सैकेण्ड ग्रेड। तो यह सिस्टम बना हुआ है। आई.टी.सी. संगीत सम्मेलन होता है उसमें गुरुओं का गाना रखा जाता है और एकाध विद्यार्थी जिनका गाना बहुत अच्छा है उनका भी कार्यक्रम रखा जाता है। देश के पांच-छह शहरों में आई.टी.सी. संगीत सम्मेलन होने का रिवाज है। तो वो पूरा ढांचा,पूरा सिस्टम, पूरी कार्यप्रणाली उसकी अलग प्रकार से थी।

जो विद्यार्थी चयनित होते हैं उनको फीस देनी नही पड़ती बल्कि उन्हें स्कॉलरशिप मिलती है। क्योंकि गुरु शिष्य परंपरा है, उनकी रहने की व्यवस्था वहां की जाती है। तो गुरु शिष्य परंपरा की एक विशेष बात यह है कि गुरु और शिष्य का साहचर्य, नियमित और लंबे समय तक पारस्परिक संवाद। शिष्य हर समय गुरु की निगरानी में रहे, कि वो क्या कर रहा है? कैसे कर रहा है? एक गुरु एक समय में कितने शिष्यों को शिक्षा दे सकता है? चार-पांच-छह इससे ज्यादा नहीं। ऐसा तय किया गया कि एक विद्यार्थी का एवरेज पीरियड पांच साल का रहे। जो विद्यार्थी सिलैक्ट होंगे उन्हें गुरु के पास सौंप दिया जाएगा और वहीं अच्छी तरह से शिक्षा प्राप्त कर लें और एक कलाकार के रूप में बाहर निकले। वहां ज्यादा गुरु गायन के ही थे। उसके साथ-साथ वाद्य के जैसे सरोद है, सितार है, तो उनके भी गुरुओं को आमंत्रित किया गया। वो 'रेजिडेंट' गुरु नहीं थे वो 'विजिटिंग' गुरु थे उनको बुलाया जाता था। और विद्यार्थियों को सौंपा जाता था। संगीत रिसर्च अकादमी में गायन के अलग-अलग घराने और सितार, सरोद वाद्य यह भी था। हमने प्रयास किया कि तबला विषय भी वहां शुरु किया जाये। लेकिन किसी कारणवश वह सफल नहीं हुआ। तो विद्यार्थी जब यहां से सीखकर जाते थे पाँच साल के बाद, उनको एक सर्टिफिकेट दिया जाता था कि यह विद्यार्थी इस गुरु के पास संगीत रिसर्च अकादेमी में पांच साल की अवधि में सीखा और इसने अच्छी प्रगति की। लेकिन यह प्रश्न सामने आया कि इस सर्टिफिकेट की संगीत रिसर्च अकादमी के बाहर क्या मान्यता है? बाहर जाकर विद्यार्थी क्या-क्या कार्य कर सकता है। चूंकि यह गुरु शिष्य परंपरा वाली संस्था है। तो सबसे पहले यह होता था कि विद्यार्थी बाहर जाए और अपने आप को कलाकार के रूप में प्रस्थापित करे। उसके लिए उसे बहुत जगह कार्यक्रम करने का न्यौता मिले या संगीत रिसर्च अकादमी के माध्यम से उन्हें बाहर भेजा जाए कि आप यहां जाकर प्रोग्राम करो ऐसा कोई सिस्टम बने, ताकि वो विद्यार्थी कलाकार के रूप में अपने आप को स्थापित कर सके। परंतु खेद की बात थी कि 35-40 वर्षों के बाद भी कितने कलाकार इस संस्थान से निकले? यदि ऐसा नहीं है तो अन्य कौन-कौन से करियर एवेन्यू उन के सामने उपलब्ध हो सकते हैं? तो यह सब देखते हुए एक बात मुझे नजर में आयी कि इस सर्टिफिकेट को फॉरमल मान्यता नहीं है कहीं पर भी। जैसे कॉलेज या यूनिवर्सिटी में म्यूजिक डिपार्टमेट में टीचर की पोस्ट निकलती है, लैक्चरर, रीडर की तो क्या हमारे विद्यार्थी वहां भाग ले सकते हैं? और इस तरह से अच्छी नौकरियां पा सकते हैं ताकि वे संगीत विषय में ही रहें और अपना कार्य करें? परफॉर्मर के साथ में टीचर भी बनें। तो उनको सिखाना भी तो पड़ता है। अपनी परंपरा को आगे कैसे चलायेंगे? साथ ही एक फाइनेंशियल स्टैबिलिटी कितनी होती है? यूनिवर्सिटी और कॉलेज में तो कम से कम एक फाइनेंशियली स्टैबिलिटी तो मिल जाती है। तो उस स्टैबिलेटी को लेकर आप आगे बढ़ सकते हैं। फाइनेशियल स्टैबिलिटी परफॉर्मेंस से भी हो सकती है, लेकिन वो कितने मिलते हैं? उसमें से कितनी निश्चित प्राप्ति की अपेक्षा कर सकते हैं? ये सब नहीं है तो फिर एक ही मार्ग रहता है कि ट्यूशन कर लो। तो व्यक्तिगत ट्यूशन भी आप कहां तक कर सकते हैं? तो कभी-कभी उसमें भी समझौता करना पड़ता है। समझौता इस तरह का कि एक विद्यार्थी है जो अच्छी-खासी फीस दे रहा है पर उनके पास टैलेंट की बहुत कमी है उनको भी सिखाना पड़ रहा है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्योंकि अच्छी फीस दे रहा है। तो यह सारी स्थितियां देखते हुए हमने कहा कि हमारे संगीत रिसर्च अकादमी की जो सर्टिफिकेट है उसको कहीं न कहीं से मान्यता जरूर मिलनी चाहिए। इसलिए हमने प्रयास किया। और अब मान्यता जरूरी है तो जो मान्यता देगे, सरकारी मान्यता या यू.जी.सी. द्वारा मान्यता मिले। तो उस मान्यता देने के लिए फिर उनके जो मानक बने हुए हैं, तो उन मानकों को हमें स्वीकार करना होगा। उसी तरह हमें एक सिस्टम बनाना होगा, 'फॉरमल सिस्टम'। तब जाकर यह होगा। पर उस फॉरमल सिस्टम बनाने के लिए कुछ विरोध हुआ। और जो विरोध कर रहे थे उनका मानना था कि अगर हम मानक स्वीकार करेंगे तो हमारी जो स्वतंत्रता है एक गुरु के रूप में शिक्षा देने की, तो यह स्वतंत्रता कम हो जायेगी। हमें उस मानक के साथ चलना पड़ेगा। हालांकि उनका कहना च्ठीक था कि स्वतंत्रता कम हो जायेगी। क्योंकि अगर हम किसी सिस्टम को स्वीकार करते हैं तो सिस्टम के साथ जो रूल्स एण्ड रैगुलेशन होते हैं उनको भी स्वीकार करना पड़ता है। लेकिन कहीं न कहीं इस तरह के समझौते करने ही पड़ते हैं। मेरा यह मानना था कि जब हमने संगीत रिसर्च अकादमी संस्था के माध्यम से यह गतिविधियां चलायी हैं तो कहीं न कहीं एक संस्थागत रूप तो उसको दिया ही है न। हम हर साल ग्रेडेशन करते ही हैं। वो भी एक सिस्टम हो गया। तो इसी के साथ कुछ ऐसा करें कि 'एक्सीलैंस इन म्यूजिक' या इसी तरह का कुछ सर्टिफिकेट हो जिसे सरकारी मान्यता मिले। हमने अपनी तरफ से बहुत प्रयास किया पर वह बात स्वीकृत नहीं हुई। और यह हुआ कि यहां पर सिस्टम ऐसे ही कायम रहना चाहिए। ऐसे ही चलना चाहिए। तो इसमें मेरी रूचि धीरे-धीरे कम हो गई। जो काम जैसे चल रहा है उसी को करते चलो, वही करते रहो, नया करने की कोई गुंजाइश नहीं है। तो फिर हमारे यहां रहने का मतलब ही क्या है?

हुआ यूं कि मुझे लगा आई.टी.सी. में हम एक सैचुरेशन पॉइन्ट में पहुंच गए थे। और हमने उसे छोड़ने का मन बना लिया था। पर इसी बीच मेरे जीवन में एक भयानक हादसा गुजरा। 26 अक्तूबर 2008 को दुर्भाग्यवश से हमारी पत्नी का देहावसान हो गया मुंबई में। मेरी पत्नी अचानक चल बसी। हार्ट-अटैक हुआ था। उनको डायबिटीज भी था। लेकिन सब अच्छा चल रहा था। सारी मैडिकल रिपोर्ट उनकी अच्छी थी। पर अचानक से बिना किसी पूर्व सूचना के, अचानक से उन्हें हार्ट-अटैक आ गया। और वो एकदम से चल बसी।

हम मुंबई छोड़कर लखनऊ आये साढ़े तीन साल रहे, फिर लखनऊ छोड़कर कलकत्ता गए वहां लगभग दो साल रहे तो मुंबई छोड़ने के बाद हमारे पारिवारिक जीवन में थोड़ा बिखराव सा आ गया था। मेरा बड़ा बेटा अमोल वो 1996 में विदेश चला गया आगे पढ़ाई के लिए। और यह भी एक बात थी कि मेरे बच्चों ने संगीत को अपनाया नहीं। जैसे मैंने अपने पिताजी के संगीत को अपनाया। वैसे मेरे परिवार में मेरे बच्चों ने संगीत को अपनाया नहीं। उनको रुचि जरूर थी सुनने में, लेकिन इसको अपने करियर के रूप में करें इसको और आगे बढ़ाए, यह बात नहीं बनी। चूंकि मेरे पिताजी ने भी मेरे ऊपर कोई बंधन नहीं डाला था, कि तुम्हें यही करना है। मैंने संगीत का चुनाव किया अपनी मर्जी से किया। तो मैंने यही सोचा कि मैं अपने बच्चों पर, दो बच्चे हैं मेरे अमोल बड़ा, आलोक छोटा, तो उनके ऊपर भी मैंने कभी यह बंधन नहीं किया कि संगीत ही करो। मैं संगीतकार हूं तो आप भी संगीतकार बनो। ऐसी कोई भी अपनी इच्छा मैंने उन पर नहीं चलायी। वो किसी अन्य विषय में अपना करियर करना चाह रहे हैं तो वो स्वतंत्रता मैंने उनको दी। मेरा बड़ा बेटा कम्प्यूटर साइंस में उसने ग्रैजुएट, पोस्ट ग्रैजुएट किया और उसको विदेश में आगे सीखने को मिला तो वो विदेश चला गया। और उसके बाद उसकी वहीं सर्विस लग गयी। ऐसा ही छोटे बेटे का रहा। उसका विषय था आर्किटैक्चर। मुंबई के सर जे.जे. कॉलेज ऑफ आर्किटैक्चर में उसको प्रवेश मिल गया। और उसने वहां चार साल का आर्किटैक्चर का कोर्स किया और उसके बाद उसको आगे की पढ़ाई के लिए अमेरिका की यूनिवर्सिटी ऑफ मिशीगन में प्रवेश मिला और वहां से वो पूरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तरह से प्रशिक्षित होकर, अर्बनप्लानिंग उसका विषय रहा उसमें उसने पोस्ट ग्रैजुएशन किया। और फिर उसकी वहीं सर्विस लग गयी। 1996 में बड़ा वाला बेटा अमेरिका गया और 1999 में छोटा बेटा भी अमेरिका चला गया। और फिर घर में हम और हमारी पत्नी। और मुंबई की यह स्थिति कि हमारे पिताजी का बनाया हुआ तीन मंजिला मक़ान। तो इतना बड़ा मकान, इतना बड़ा स्टैबिलिशमेंट है। फिर हमारे पिताजी और चाचाजी द्वारा स्थापित संस्था व्यास अकैडमी ऑफ इंडियन म्यूजिक वो भी है। उसका भार मुझ पर ही था किन्तु मेरे लखनऊ जाने से पूर्व मेरे चचेरे भाई जो कि मुझसे पांच साल बढ़े हैं, पं. शंकरराव व्यास जी के बेटे, श्री सुभाष व्यास, वो रिटायर होकर मुंबई आ गये और रिटायरमेंट के बाद वो सक्रिय रूप से विद्यालय देखने लगे। जब मुझे लखनऊ जाना पड़ा तो उस समय तक वो मुंबई में आ गये थे। और वह हमारी संस्था को बराबर देख रहे थे। तो यह तय हुआ कि मैं लखनऊ चला जाऊं और हमारी श्रीमती वहाँ रहें। और विद्यालय को देखने में सुभाष दादा की सहायता करें। और फिर मुम्बई से वहाँ आती जाती रहे। हम भी छुट्टियों में आते जाते रहें। तो ऐसा चलता रहा। फिर हम वहां से कोलकाता गये तो फिर वही स्थिति चलती रही। कोलकता गये तो वहां अकेले रहते थे और मुंबई आते-जाते रहते थे।

नहीं, वो अकेली थीं वहाँ पर। हम आने वाले थे दिवाली के लिए। लेकिन दिवाली के एक दिन पूर्व ही वो चल बसीं। तो यह एक बहुत बड़ा आघात था। और उसके बाद मेरा मन बाकी बाहर की गतिविधियों से हट गया। मैंने आई.टी.सी. से निवेदन किया कि अब आप मुझे इस काम से मुक्त करें। वैसे भी मेरा इन्ट्रेस्ट कम हो गया था, दूसरे यह हादसा हो गया तो मैंने निश्चय किया कि अब मुझे यहाँ से जाना है। फिर मैंने वहाँ से रिज़ाइन कर दिया। लेकिन वहाँ से रिलीव होने में मुझे कुछ महीने लगे और इस तरह मई 2009 में मैं वापिस मुंबई आ गया। अब तय कर लिया कि मैं मुंबई में ही रहूँगा। और अपनी मजएँ और अपने टर्म्स पर ही काम करूँगा। शत प्रतिशत फ्रीलांस काम।

इसी दौरान सुनीरा जी से मेरा परिचय हुआ हमने जैसा सबसे पहला परिचय तो 1982 में हुआ था अक्तूबर में, जब उन्होंने संगीत संस्थान ज्वइन किया जयपुर में। उससे पहले कोई परिचय नहीं था। सुनीरा जी जयपुर की हैं, उनका परिवार जयपुर का है। और वह वहाँ जयपुर से बनारस हिन्दु यूनिवर्सिटी गयी और वहाँ से डॉक्टरेट वगैरह करके आयीं। उनकी सर्विस राजस्थान संगीत संस्थान में जहाँ पर हम प्रिंसिपल थे। वहाँ उनकी सबसे पहली लैक्चरर की सर्विस लगी थी। उन्होंने अक्तूबर 1982 में ज्वाइन किया। और तब पहली बार सुना कि हम वहाँ प्रिंसिपल हैं। वहाँ पर एक बार सामने इनको देखा, परिचय हुआ कि ये लैक्चरर बनकर आयीं हैं, सितार विषय की हैं। 1985 में इन्होंने दिल्ली यूनिवर्सिटी ज्वाइन किया। यहाँ वो अपना काम कर रही थीं। हम भी अपना काम कर रहे थे। जब हम लखनऊ गये वाईस चांसलर बनकर तो वनस्थली विद्यापीठ से किसी सलैक्शन कमिटी में ऐज़ ए ऐक्सपर्ट हमे बुलाया गया। और वनस्थली में उसी कमिटी में सुनीरा जी को भी बुलाया गया था। तो वनस्थली में हमारी पुनः मुलाकात हुई। तब हमने जाना कि वो दिल्ली में आ गयीं हैं, वहाँ प्रोफेसर हो गयीं हैं 2004 में। तो वहाँ उनसे परिचय हुआ उन्होंने अपनी किताबें वगैरह मुझे दिखायी, एक कॉपी भी दी उन्होंने मुझे। और अपने बारे में बताया कि वो क्या-क्या कर रहीं हैं। फिर मैंने देखा कि उन्होंने इतना अच्छा काम किया है, किताबे लिखी हैं, उनका ऐक्सपरटाइज़ है तो क्यों न उन्हें लखनऊ में हमारे यूनिवर्सिटी के अलग-अलग कमिटी में शामिल किया जाये, तो हमने उनको अपनी विविध कमीटियों में शामिल किया। वाद्य विषय की ऐक्सपर्ट के रूप में, सिलेबस के काम के लिए, परीक्षा के लिए, सलेक्शन के लिए इत्यादि, इस तरह दो तीन कमिटी में मैंने उनको शामिल किया। और वह आती रहीं। बहुत अच्छा काम करती रहीं। शी इज़ अ वंडरफूल वर्कर। विषय के प्रति पूरी तरह से संमर्पित हैं। उनका काम बहुत ही अच्छा रहा। फिर धीरे-धीरे वो मुझसे सीखने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगीं, रागों के बारे में जानकारी लेने लगीं व बंदिशें सीखी व सितार पर बजाने लगीं। जब तक मैं वहाँ रहा तब तक वो लगातार आती रहीं। फिर मैं कोलकता चला गया तो वहाँ पर भी मैंने देखा कि वाद्यों पर कुछ ऐक्सपर्ट की ज़रूरत रहती है। तो हमने उन्हें वहाँ भी बुलवाया। हमने उनके कुछ वाद्यों के विकास व वाद्यों के घरानों पर लैक्चर डैमोन्स्ट्रेशन आयोजित किये, प्रोग्राम भी रखा हमने उनका आई.टी.सी. कोलकता में। तो इस तरह से परिचय बढ़ता गया। फिर कोलकता में ही जब मैं था तो अचानक मेरी पत्नी चल बसीं। उस समय. मुझे एक बहुत बड़ा आघात लगा। क्योंकि एकदम अचानक से यह हो गया। ये मेरे जीवन का एक बहुत-बहुत बड़ा हादसा था। और हम अकेले थे। हमारे बेटे ज़रूर भाग-दौड़ कर मुम्बई आये। लेकिन वो आयेंगें, रहेंगे पर कितने समय तक रहेंगे हमारे साथ। वो भी दो महीने रहे और उसके बाद जाना पड़ा क्योंकि उनको भी अपना काम-काज देखना है। नवंबर-दिसंबर में चले गये वो। फिर हम भी दो-तीन महीने अमेरिका रहे। पर यह थोड़े दिन ही रहा क्योंकि हम भी हमेशा के लिए अमेरिका नहीं जाना चाहते थे। जीवन में एक वैक्यूम सा हो गया। एक दिन हमने निश्चय किया कि चलो अपना काम करते हैं, जीवन फिर से शुरु करते हैं। उसी दरम्यान सुनीराजी ने मुझे काफी भावनिक आधार दिया। वो अविवाहित थीं, तो मेरी पहली पत्नी के देहावसान के दो साल बाद, मैंने इनसे विवाह किया। इस उम्र में इस तरह से विवाह करने का मतलब यही था कि एक दूसरे को 'कम्पैनियनशिप' देना, एक जीने के लिए आधार देना। क्योंकि यह आयु उनके लिए भी नहीं थी कि नयी फैमिली स्टार्ट कर लें। और न ही हमारे लिए। हमारे दोनों के जीवन का एकमात्र उद्देश्य था- 'संगीत'। हम भी संगीत के प्रति 'डिवोटिड' थे, वो भी संगीत के प्रति 'डिवोटिड' थीं। तो एक विषय मिल गया 'संगीत' का और दूसरा था 'कंपैनियनशिप'। सुनीरा जी का सारा कार्य दिल्ली में था, दिल्ली में रह रही थीं, सर्विस दिल्ली में, और हमारा सारा कार्य मुंबई में। तो ये ही तय किया कि हम इसी तरह 'कन्टीन्यू' करेंगे। उनकी अपनी 'स्पेस' है, मेरी अपनी 'स्पेस' है। और दोनों की एक कॉमन स्पेस भी बन गयी। इस नए युग में नए साधनों के कारण आना-जाना अब तो बहुत ही आसान हो गया – कल जाना है तो हवाई जहाज से पहुँच जाओ। ढाई घण्टे का सफर है। आसानी हो गयी।

सन् 2010 जनवरी में मेरे जीवन में सुनीरा कासलीवाल का प्रवेश हुआ और मेरे जीवन को एक नयी दिशा मिली, अलग मोड़ मिला। सुनीरा जी संगीत में ही प्रशिक्षित थीं। बहुत ही अच्छा सितार बजाती हैं। और परफॉर्मिंग आर्टिस्ट भी हैं। दिल्ली यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर हैं सितार विषय की। कहने का अर्थ ये कि संगीत में ही थी। और संगीत विषय का ही एक जीवन साथी मिलना मेरे लिए एक अलग अनुभव था। इसमें यह हुआ कि संगीत विषय की गहराई से पुनः समझ, उसका पुनः आकलन और उस विषय में हम क्या कर सकते हैं? किस दिशा में हमारा योगदान.दे सकते हैं। इस पर नए सिरे से विचार शुरु हुआ। संगीत बहुत बड़ा विषय है। लेकिन हम इसमें क्या कर सकते हैं। यह एक बड़ी ही विचारणीय बात थी। बहुत विचार-विमर्श के बाद में एक नया विचार यह उभर कर आया कि हम नयी पीढ़ी के लिए कुछ करें। नये विद्यार्थियों की आज की क्या समस्याएँ है, संगीत के अध्ययन की, प्रायोगिक अध्ययन की, तो हम उनको किस तरह एक नयी दिशा दे सकते हैं? इस तरह संगीत के संबंध में हमारा जो एक विचार 'स्वकेन्द्री' था वो बदलकर 'विद्यार्थी केन्द्री' हुआ। और बहुत सोच समझ कर निश्चय किया कि नयी पीढ़ी के लिए हम कार्यशालाओं का आयोजन करेंगे। मुझे यहाँ कहने में कोई संकोच नहीं है कि इस विचार का बीज सुनीरा ने ही मेरे मन में बोया। और हमने कार्यशालाओं का आयोजन शुरु किया। मार्च 2013 में हमारे दिल्ली के निवास स्थान से इन कार्यशालाओं का सिलसिला शुरु हुआ। और अब तक हम लगभग 25 से भी अधिक संगीत की कार्यशालाएँ कंडक्ट कर चुके हैं। इन कार्यशालाओं का नियोजन कैसे होगा? कार्यशालाओं में विषय क्या रहेगा? कितने सत्र रखेंगे? उसका पूरा प्लानिंग, सुनीरा जी का ही रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय निश्चित करने के बाद उस पर मेरी सोच शुरु होती है और उसमें मेरा अनुभव और मेरा अभ्यास, इसको साथ लेते हुए हम विवेचन करते हैं। विद्यार्थियों के सामने चीज़ें रखते हैं। और उनके उपयोगी इस तरह की सामग्री उनको देने का हम प्रयास करते हैं। यह कार्यशालाएँ बहुत ही सफल रही हैं। दो दिवसीय, तीन दिवसीय, इस तरह की अवधि की कार्यशालाएँ रहीं हैं। प्रत्यक्षित प्रदर्शन और प्रत्यक्षित प्रशिक्षण इन कार्यशालाओं का मुख्य प्रयोजन है। हमारे निवास स्थान से, दिल्ली में प्रारम्भ होने के कुछ समय बाद ही धीरे-धीरे अलग-अलग जगहों से कार्यशालाओं के लिए निमंत्रण आने लगे। जैसे गंधर्व महाविद्यालय दिल्ली, संगीत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, इंडिया हैबिटेड सैंटर दिल्ली इन विविध स्थानों पर कार्यशालाएं आयोजित हुई। साथ ही दिल्ली से बाहर जैसे आगरा, इलाहाबाद, खैरागढ़, पटना, कानपुर, अहमदाबाद, पुणे इत्यादि जगहों पर सफल कार्यशालाएँ सम्पन्न हुई। अभी हाल ही में संगीत नाटक अकादेमी की तरफ से त्रिपुरा यूनिवर्सिटी, अगरतला में तीन दिवसीय कार्यशालाओं का आयोजन हुआ। स्पिक मैके व सप्तक संस्था की कार्यशाला व इसी तरह से मुंबई में कार्यशालाएँ आयोजित हुई। मुझे बहुत ही प्रसन्नता है कि इन कार्यशालाओँ का 'रिस्पौंस' बहुत ही सकारात्मक और बहुत ही अच्छा मिला। विद्यार्थियों की ज्ञान वृद्धि तो हुई ही लेकिन उनको सोचने का, विचार करने का एक रास्ता मिला, उनको एक नयी दिशा मिल गयी। अब धीरे-धीरे विद्यार्थियों से प्रश्न आने लगे, जो सुनकर हम भी अचंभित हो गये कि किस तरह से विद्याथएँ विचार करने लगे हैं। नयी पीढ़ी के लिए मुझे ये कहना है कि ये बहुत ही प्रतिभाशालो हैं और उनको अगर अच्छी तरह से, योग्य विधि से सामग्री दी जाये तो उसका बहुत ही अच्छा परिणाम हो सकता है। साथ ही उनके प्रश्न हमें विचार करने के लिए प्रेरित करते हैं। 'टीचिंग इज़ लर्निंग अगेन', यह बात वास्तव में सार्थक सिद्ध हो गयी। कार्यशालाओं के लिए अलग-अलग विषयों का चुनाव हम करते हैं, अलग-अलग ऐंगल से उनको देखते हैं, विद्यार्थियों को सिखाना, उनको संगीत विषय की सही कल्पना देना, सही तरह से उसे अभ्यास कैसे करें? रियाज़ कैसे करें? अपने पिच का स्वर का निर्धारण कैसे करें? साथ ही अलग-अलग रागों में शिक्षण व बंदिशें सिखाना, एक रागांग लेकर उन रागों को सिखाना, ग्वालियर घराने की गायकी का दिग्दर्शन कराना, आगे अनुसंधान के लिए प्रेरित करना इत्यादि। यह जो कार्य हमने, यानि मैंने और सुनीरा जी ने साथ में मिलकर शुरु किया है उसको बहुत ही सफलता मिल रही है, साथ-साथ हमें इस बात का भी आभास हो रहा है कि आगे और भी बहुत कुछ करना है। यह यात्रा है, यात्रा चलती रहनी चाहिए। और आगे बहुत कुछ करना है। सुनीरा जी के मेरे जीवन में आने से और भी बहुत कुछ बदलाव हो गये हैं सकारात्मक बदलाव हुए हैं। जीवन को एक नया अर्थ भी मिला है। और आशा है संगीत के लिए इसी तरह आगे भी कुछ दोनों मिलकर करते रहेंगे।

अब हमारी यह सोच बनी है कि हम पैदा हुए, भगवान ने हमको प्रतिभा दी, कुछ गुण दिया, कुछ दिमाग दिया। जो हर किसी को नहीं मिलता। उसके ऊपर जो हमने गुरुओं से शिक्षा पायी। स्कूल गये। यूँ कहो कि हमारी क्वालिफिकेशन हमारी योग्यता,जो हमने हासिल की वो यहाँ रहकर यहाँ से लेकर हासिल की, और जो हम बने हैं वो यहाँ कि सामग्री से बने हैं। और जब हम वापस जायेंगे भागवान के पास तो क्या ले जायेंगे? यहीं पर छोड़कर जायेंगे। तब हमारी एक ज़िम्मेदारी बनती है कि जो यहाँ लिया है वो यहीं देकर जाना है। तो विद्या दान करना है यह निश्चित किया। और अब दान किया जाये तो कैसे? किसको? किस तरह से? और यह दान भी सुपात्री को देना है। कुपात्री दान विद्या नाश करता है। तो सुपात्री दान हो तभी जाकर विद्या बढ़ती है। तो सुपात्री के लिए ढूँढो कौन सुपात्री है? आप अपनी तरफ से परीक्षा ले लो उसकी। उसकी जाँच कर लो। जो विद्यार्थी आया है वो सुपात्री है कि नहीं। जो भी सिस्टम हो उससे उसकी जाँच तो कर लो, निश्चित कर लो कि यह सुपात्री है कि नहीं, परखो उसको। और अच्छी तरह से परखने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के बाद अगर यह पाया जाये कि यह सुपात्री है तो फिर दिल खोलकर दान दे दो उसको, पूरा दान करो। लेकिन यहाँ एक बात थी कि हम तो शिष्यों को यह अमूल्य चीज दे रहें हैं और सामने वाला उसकी कीमत को नहीं समझता, क्योंकि वो फ्री है तो ऐसी भी स्थिति नहीं चाहिए उससे भी विद्या का नाश होता है। तो इस तरह से हमने हमारे मानक तय किये। विद्या दान करना है लेकिन साथ में गुरु दक्षिणा भी लेंगे। और इन मानकों के तहत विद्यार्थी आये। एक बार हम विद्यार्थियों को सिखाने बैठ जाते हैं तो हम घड़ी की तरफ नहीं देखते। पूरा सैशन, चाहे सैशन घण्टे भर का हो, डेढ़ घण्टे का हो, दो घण्डे का हो, ढाई घण्टे का हो, चलता रहता है।

अवॉर्ड और पुरस्कार तो बहुत से मिले हैं लेकिन विशेष सम्मान जो सरकार की ओर से है, उनमें शामिल है संगीत नाटक अकादेमी अवॉर्ड, जो 2008 में मिला। वैसे 2007 का अवॉर्ड था जो कि 2008 के अप्रैल में हमें मिला यानि उसका समारोह हुआ। 1996 में मुझे रेडियो में टॉप ग्रेड मिला था। मैंने अनुभव किया है कि मैं किसी के पीछे पडूं कि यह सम्मान मिलना चाहिए, यह अवॉर्ड मिलना चाहिए, यह चीज मुझे मिलनी चाहिए, ये मैंने कभी नहीं किया। लेकिन मैं अपना काम करता चला गया। कोई अपेक्षा नहीं की। बिना प्रयास के, बिना मांगे ही। ऐसे ही सारी चीजें मिल गयीं। कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। ये गीता का श्लोक मेरा मूल मंत्र है। अपना काम करते रहो बिना फल की अपेक्षा के। दुनियादारी की चीज़ें वो ही आपके पीछे आयेंगी। किसी चीज़ की अपेक्षा करो और वो नहीं होता तो निराशा आ जाता है। निराशा का शिकार कभी नहीं बनना चाहिए। जो है अच्छा है, जो हो रहा है अच्छा हो रहा है, और जो होगा वो भी अच्छा ही होगा। इस विश्वास के साथ चलना है। मैंने ऐसे-ऐसे बड़े-बड़े कलाकार देखे है जो निराशा से तबाह हो गये। क्योंकि उन्होंने बहुत सारी चीज़ों की बहुत बड़ी-बड़ी अपेक्षाएं की थीं। ऐसा देखा है मैंने। तो मैंने सोचा कि कभी भी 'फ्रस्ट्रेशन' का शिकार नहीं बनना है। मेरा अपना खुश होना, वो सर्वोपरि है। किसी भी कीमत पर इस खुशी को नहीं खोना है। अपना काम करते रहना है। यह मेरे जीवन का सूत्र रहा है। हमारा अपना काम चल रहा है। हम दोनों मिलकर काम करते हैं। तो जो हो रहा है अच्छा हो रहा है। जो होगा अच्छा ही होगा। तो यह है मेरी अब तक की जीवन यात्रा।

प्रस्तुतिः रानी कुमारी

(इस आत्मकथा को पं. विद्याधर व्यास से रानी कुमारी ने बातचीत कर लिपिबद्ध किया है। यह बातचीत आठ से 12 जून 2019 के मध्य हुई। बातचीत काफी लंबी रही जिसका सुनीरा कासलीवाल व्यास द्वारा संपादित रूप यहां प्रस्तुत किया गया है। – संपादक)

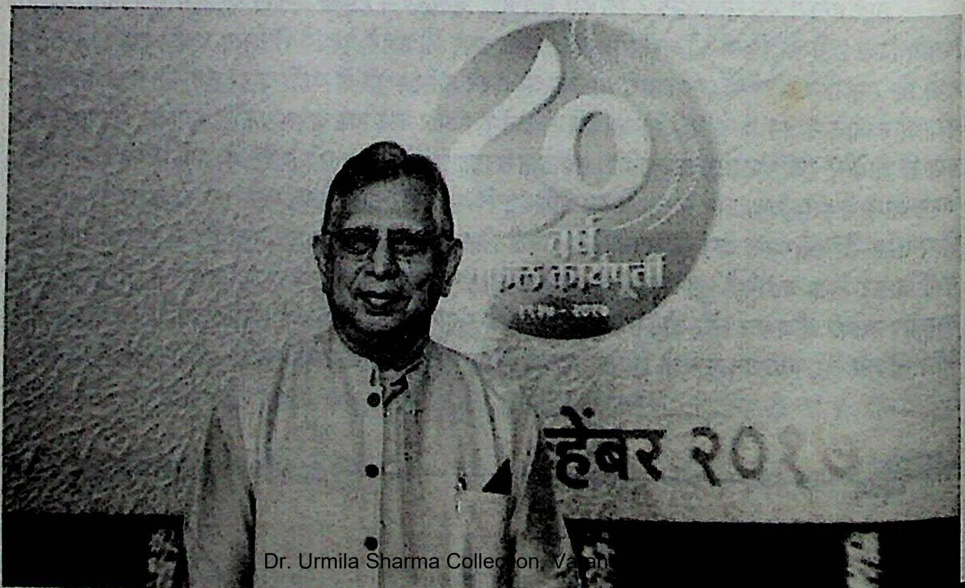

Dr. Urmila Sharma Collection, Va...

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञान बाहर से भीतर आता है, कला भीतर से बाहर

पं. विद्याधर व्यास से विजय शंकर मिश्र की बातचीत

पं. विद्याधर व्यास बहुमुखी प्रतिभा संपन्न कलाकार हैं। एक श्रेष्ठ गायक, कलाकार, रचनाकार, संगीत अधिकारी, गुरु, अभिनेता, विचारक और संगीत उन्नायक के रुप में इनकी प्रतिभा सर्वविदित है। उन्होंने भातखंडे संगीत संस्थान (सम विश्वविद्यालय, लखनऊ) के उप कुलपति और आई. टी. सी. संगीत रिसर्च अकादमी (कोलकाता) के प्रमुख निदेशक के पद को सुशेभित किया है तो आकाशवाणी एवं दूरदर्शन द्वारा अनुमोदित सर्वोच्च श्रेणी के गायक के रुप में भी देश-विदेश के प्रतिष्ठित मंचों को अपने भावपूर्ण गायन से गुंजरित किया है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् भी इन्हें असाधारण संगीतकारों की श्रेणी में रखती है।

8 सितम्बर 1944 को महानू संगीतज्ञों के परिवार में जन्में विद्याधर व्यास को संगीत के प्रति अनुराग का भाव घर परिवार में ही मिला। बड़े चाचा पं. शंकर राव व्यास और पिता पं. नारायण राव व्यास प्रतिष्ठित गायक भी थे और संगीत ऋषि पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के अति प्रिय शिष्यों में भी शुमार थे। पं. व्यास का बचपन संगीत के इसी आंगन में ख्याल, तराना और भजनों के भावपूर्ण स्वर लहरियों से खेलते हुए व्यतीत हुआ। अतः जल्द ही उन्होंने संगीत के क्षेत्र में स्वयं को सफलतापूर्वक स्थापित कर लिया, बावजूद इसके कि अपने बचपन और किशोरावस्था में न तो इन्होंने अपनी संगीत शिक्षा को बहुत गंभीरता से लिया था और न तो इनके अभिभावकों ने ही। उन दिनों विद्याधर का रुझान पढ़ाई की ओर ज्यादा था। और, वे अपने विद्यालय के मेधावी छात्रों में गिने जाते थे। उनका लक्ष्य भी इंग्लैंड या अमेरिका जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने का था। एक अत्यन्त निकट के परिचित व्यक्ति द्वारा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिए सहयोग करने का आश्वासन भी मिल गया था। लेकिन, पुरानी कहावत है-मेरे मन कछु और है विधना के कछु और! हुआ यह कि जिस विषय में उन्हें अच्छे अंक हासिल करने थे, और जिसमें बहुत अच्छे अंक प्राप्त कर लेने का उन्हें पूर्ण विश्वास भी था, उसी विषय में कुछ परिस्थितिजन्य कारणों से उन्हें काफी कम अंक मिले।

'लेकिन प्रवेश का रास्ता फिर भी पूरी तरह से बंद नहीं हुआ था।' व्यासजी बताते हैं-'मेरे निकट संबंधी ने मुझसे कहा कि निराश होने की बिल्कुल भी जरुरत नहीं है। तुम यहां आ जाओ। छः महीने का एक कोर्स करना होगा और तुम्हे आराम से प्रवेश मिल जायेगा। इसका दावा और वायदा मैं करता हूं। लेकिन, इतने सारे उपाय करके, एक प्रकार से चोर दरवाजे से कैम्ब्रिज में प्रवेश लेना मेरे स्वाभिमान को गंवारा नहीं था। सच कहूं तो उस समय मैं एक प्रकार से वैचारिक दोराहे पर खड़ा था। मेरा एक मन यह भी कह रहा था कि मुझे संगीत के क्षेत्र में ही आगे बढ़ने का प्रयास करना चाहिए, जिसमें मेरे ताऊजी और पिताजी पहले से ही बहुत अच्छा काम कर रहें हैं। मैं इसी उधेडबुन और अनिश्चय की स्थिति में था कि एक दिन पिताजी ने मुझे बुला लिया। मैं जब उदास सा चेहरा लेकर उनके सामने गया तो उन्होंने किसी सपाट तान की तरह एक सवाल दाग दिया- 'अरे भाई! यह सब कब तक चलेगा? समय निकलता जा रहा है, और गया हुआ समय वापिस नहीं आता है। तुम अब बच्चे नहीं रहे। तुम्हें जल्दी से कोई ठोस निर्णय लेना होगा।' व्यासजी एक क्षण के लिए रुकते हैं फिर अपनी बात को यूं आगे बढ़ाते हैं, जैसे स्थायी से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंतरा की ओर बढ़ रहें हैं- 'न जाने वह पिताजी के सान्निध्य का असर, या कोई शक्ति- कि - अचानक मेरे मुख से निकला- 'मैं गाना गाऊंगा, मुझे इसी क्षेत्र में आगे बढ़ना है।' सुनकर पिताजी ने मुझे घूरकर देखा।

फिर बोले- 'फिर से सोच लो। कहीं बाद में तुम्हारा मन बदल तो नहीं जाएगा? तुम अपने वायदे से मुकर तो नहीं जाओगे?'

मैं दृढ़ स्वर में बोला- ' नहीं! मैं ने निश्चय कर लिया है कि अब मुझे गाना ही गाना है।'

यह सुनकर पिताजी कुछ क्षण तो चुप रहे, जैसे मेरे शब्दों के वजन को तौलने की कोशिश कर रहें हों। फिर बोले- 'जाओ.... तानपूरा लेकर आओ।'

मैं दूसरे कमरे से तानपूरा उठा लाया। तब वे बोले- 'तानपूरा पर हाथ रखकर शपथ लो कि आज से तुम्हारा सम्पूर्ण जीवन संगीत के प्रति समर्पित रहेगा।'

मैंने शपथ लिया- 'आज से मेरा सम्पूर्ण जीवन संगीत के प्रति समर्पित रहेगा।'

और... हमारा- पिता-पुत्र का रिश्ता जैसे एक क्षण में बदल गया, और हम गुरु-शिष्य के रिश्ते में बंध गये। फिर, तो एक बहुत ही अनुशासित दिनचर्या शुरु हो गई। सुबह साढ़े पांच बजे मुंह पर पानी के छींटे डालकर जगा दिया जाता था। फिर, शुरु होता था मंद्र साधना का सिलसिला..... एक-एक स्वर को खोलते हुए नीचे जाने का प्रयास, आकार में सुर लगाने का अभ्यास होने लगा... फिर, आकार को स्वरों के साथ जोड़ने की प्रक्रिया शुरु हुई। फिर धीमी और गहरी श्वांस का अभ्यास, स्वरों को श्वांस और मूलाधार से जोड़ने का अभ्यास.... फिर निषाद और धैवत आदि की साधना शुरु हुई। इससे आवाज में अंतर आने लगा। अब तक मैं संगीत अलंकार की परीक्षा उत्तीर्ण कर चुका था, जिसे एम. ए. के समकक्ष माना जाता है- लेकिन, जब शिक्षा का यह क्रम आरंभ हुआ तो अनुभव होने लगा कि अभी तक जो कुछ भी सीखा था वह स्थूल था। उसमें जागृति और चेतना का प्रवेश तो अब आरंभ हुआ है।

सुबह एक-डेढ़ घंटा रियाज करने के बाद, स्नानादि से निवृत होते-होते साढ़े नौ बजे से विद्यार्थियों का आना शुरु हो जाता था। मुझे उन लोगों के साथ भी रियाज में शामिल होना पड़ता था। यह सिलसिला दोपहर करीब साढ़े बारह बजे तक चलता था। इसके भोजन आदि करके दोपहर में विश्राम करते थे। फिर, शाम चार बजे से विद्यार्थियों के दूसरे वर्ग का आवागमन शुरु हो जाता था। कभी कोई शिक्षक अनुपस्थित हो जाता था तो कभी-कभी मैं भी सिखाने के लिये बैठ जाता था पिताजी के निर्देश पर। इसके अलावा पिताजी के साथ उनके कार्यक्रमों में जाने का सिलसिला भी अब आरंभ हो गया था। कार्यक्रमों में उनकी पीछे तानपूरा लेकर बैठता था, बीच-बीच में उनका संकेत मिलने पर गाता भी था। खाली समय में संगीत शास्त्र का भी अध्ययन करता था।

मैंने व्यासजी को रोकते हुए पूछा- 'आप संगीत को समर्पित परिवार के सदस्य हैं, और बी. ए. की पढ़ाई पूर्ण करने के साथ ही आपने संगीत सेवा का संकल्प ले लिया था, तो फिर आगे की पढ़ाई कैसे की? क्यों की? इसकी आवश्यकता आपको क्यों अनुभव हुई?'

'मेरा ननिहाल पक्ष पढ़ाई-लिखाई के मामले में अग्रणी रहा है। मेरे नाना और सभी मामा लोग उच्च शिक्षा प्राप्त उच्च पदाधिकारी थे और समाज में उनका काफी मान-सम्मान तथा दबदबा था। आप कह सकते हैं कि संगीत का संस्कार पिता की ओर से मिला तो शिक्षा का मां की ओर से। पिताजी को- 'संगीत ही करना है-' का वचन देने के बाद मैं पूरी तरह संगीत में ही डूब भी गया था। लेकिन, मन के एक खाली कोने में शिक्षा अधूरी रह जाने का दुख भी था, और वह दुख तब और बढ़ जाता था जब अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहपाठियों को मेडिकल या अभियांत्रिकी की पढ़ाई करते हुए देखता था।' व्यासजी की आवाज में एक क्षण के लिए जैसे मार्मिक करुण रस उभरता है और फिर ओझल हो जाता है- 'ऐसे ही एक दुखद क्षण में मैं ने कम-से-कम एम.ए. कर लेने का निश्चयं किया और बिना किसी को बताए एक दोपहरी पास के ही कॉलेज में जा पहुंचा। मेरे सामने मेरा लक्ष्य बिल्कुल स्पष्ट था कि मुझे संगीत के क्षेत्र में ही आगे बढ़ना है, और साथ में एम. ए. भी करना है- चाहे विषय कोई भी हो- शर्त्त बस यह कि-संगीत साधना न बाधित हो। कॉलेज में जाकर पता चला कि समाजशास्त्र के लेक्चर दोपहर एक बजे से तीन बजे के बीच होते हैं। मुझे यह समय अपने अनुकूल लगा क्योंकि यह पिताजी के भोजन और आराम का समय होता था, अतः मैं घर से निकल सकता था। विधाता भी जैसे धीरे-धीरे मेरी सहायता कर रहे थे। शनिवार और रविवार को पिताजी के साथ अधिक समय रहना पड़ता था, कई बार कार्यक्रमों के सिलसिले में बाहर भी जाना पड़ता था। तो, शनिवार और रविवार को कॉलेज में अवकाश होता था। एक और बड़ी बात यह कि प्रथम वर्ष की समाप्ति के बाद समाजशास्त्र की परीक्षा नहीं देनी थी। परीक्षा सिर्फ दूसरे वर्ष के अंत में होनी थी। इस तरह मैं संगीत और पढ़ाई साथ-साथ करने लगा। लेकिन, रोज दोपहर को जल्दी-जल्दी खाना खाकर जब घर से निकलने लगा तो सवाल तो उठना ही था। सबसे पहले मां ने पूछा। उन्हें मैं ने सच्चाई बता दी, लेकिन इस विनति के साथ कि वे पिताजी को न बताए। मां का आशीर्वाद मिल गया। तभी तो उन्हें करुणा की देवी और ममता की मूरत कहा जाता है। कुछ दिनों बाद पिताजी ने भी मां से पूछा कि यह रोज दोपहर को जल्दी-जल्दी खाना खाकर कहां जाता है ? मां ने सीने पर पत्थर- रखकर बेटे के लिये पति से झूठ बोल दिया- 'पास के पुस्तकालय में पढ़ने के लिए जाता है। वहां पर सगीत विषय की अंग्रेजी की भी किताबें हैं न।' पिताजी चुप हो गए। वे मामले को शायद अच्छी तरह से समझना चाह रहे थे। देखते-देखते बीस महीने का समय बीत गया, और फाईनल परीक्षा के दिन निकट आ गए। तब एक दिन डरते-डरते मां साथ में लेकर मैं पिताजी के पास गया, उन्हें सारी बात बताई और बोला कि मुझे सिर्फ चार महीने का समय चाहिए। संगीत के प्रति मेरे क्रियाकलापों से अब तक पिताजी भी संतुष्ट हो गए थे। अब, मैं उन्हें शिकायत का मौका बिल्कुल भी नहीं देता था। इसलिए उन्होंने यह कहते हुए अनुमति दे दी कि- 'संदेह तो मुझे पहले ही हो गया था। आखिर बाप हूं तुम्हारा। ये बाल धूप में नहीं सफेद हुए हैं।' मैंने चार महीने अच्छी तरह से पढ़ाई करके परीक्षा दी और मेरिट लिस्ट में दूसरा स्थान प्राप्त किया। और अगले ही दिन पिताजी के साथ एक कार्यक्रम के लिए निकल पड़ा।'

व्यासजी को रुकते देख मैंने उनके पिता पं. नारायण राव व्यास की शिक्षा पद्धति के विषय में पूछ लिया- 'आपके पिता पं. नारायण राव व्यास को एक उत्कृष्ट कलाकार के रुप में तो हम सब जानते हैं। मुझे स्वयं कई बार प्रत्यक्ष रुप से उनका गायन सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। लेकिन, वे एक अध्यापक के रुप में कैसे थे?'

'न केवल मेरे पिताजी, बल्कि संगीत ऋषि पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के जितने भी शिष्य थे, वे सभी बहुत ही अच्छे अध्यापक सिद्ध हुए क्योंकि पलुस्करजी की शिक्षा पद्धति अत्यन्त सूक्ष्म और वैज्ञानिक थी। ऐसा लगता है कि बचपन में ईश्वर ने उनके दोनों नेत्रों की ज्योति वापस लेकर उन्हें हजारों नेत्र ज्योति प्रदान कर दी थी। नेत्रहीन होने के बावजूद अपने ज्ञान चक्षु से वे बहुत कुछ देख और समझ पाने में सक्षम थे वे। मेरे पिता पं. नारायण राव व्यास प्रयोग की शास्त्रीय व्याख्या भी समझाते थे और शास्त्र की प्रयोगधर्मिता भी। वे दोनों को अलग-अलग करके नहीं देखते थे, एकसाथ लेकर चलते थे। जब एक राग को शुरु करते थे तो उसके आसपास के कई अन्य रागों से भी परिचित कराते थे कि कहां किसे स्पर्श करना है तो कहां किससे बचना है? छायानट और केदार को एक दूसरे से अलग कैसे रखना है? भूपाली, देशकार और शुद्ध कल्याण की शुद्धता को बचाए रखने के लिए क्या करना चाहिये? इसी क्रम में एक ठाठ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के कई रागों का भी वे परिचय कराते हुए आगे बढ़ते थे।'

एक जमाना था जब संगीत कला के एक-से-एक धुरंधर विद्वान हजारों रुपये का पारिश्रमिक अंगूठा लगाकर लेते थे। उनकी शैक्षणिक योग्यता 'न' के बराबर होती थी। जबकि, आज का हर दूसरा युवा संगीतकार 'डॉक्टर' होता है, यद्यपि उसकी वास्तविक स्थिति 'मरीजों' वाली ही होती है। शैक्षणिक संस्थाओं से संगीत को जोड़ देने से शैक्षणिक योग्यता जरुरी भी हो गई है। लेकिन, क्या संगीत जैसी ललित कला को शैक्षणिक योग्यता के साथ जोड़ने से सचमुच कुछ लाभ हुआ है? जिसे पूरिया, मारवा और सोहनी के बीच का भेद स्थापित करना हो, उसे इससे क्या फर्क पड़ता है कि पृथ्वी अपनी धुरी पर किस गति से घूमती है? स्पष्ट है, ऐसे प्रश्न का उत्तर व्यासजी जैसा व्यक्ति ही दे सकता है जिसने गुरु शिष्य परम्परा के अंतर्गत संगीत की शिक्षा भी प्राप्त की है और कॉलेज में जाकर एम.ए. , पी-एच.डी. भी किया है!

पं. व्यास इस प्रश्न का उत्तर देने में देर नहीं लगाते हैं। वे तराना की गति से इस प्रश्न का उत्तर कुछ इस अंदाज में देते हैं जैसे प्रश्न उन्हें पहले से मालूम हो और उत्तर देने के लिए वे पहले से ही तैयार बैठे हों। वे सोफे पर बैठने की मुद्रा बदलते हुए मेरी ओर मुड़ते हैं- 'देखिए, शिक्षा कोई भी व्यर्थ नहीं जाती है, बस आपको उसके सदुपयोग की कला आनी चाहिए। मैं अपना ही उदाहरण आपको देता हूं। मैं ने जब एम.ए. के लिए समाज शास्त्र विषय का चुनाव किया था तो उसका सीधा सा कारण यह था कि उसके कारण मेरी सांगीतिक सक्रियता बाधित नहीं होगी। लेकिन, जब मैं ने समाज शास्त्र विषय का गहराई से अध्ययन किया तो मुझे संगीत का भी समाज शास्त्रीय रुप दिखने लगा। आखिर! संगीत भी तो एक सामाजिक कला ही है। समाज में ही पनपती और फलती-फूलती है। लेकिन, दो भिन्न पक्षों को आप एक दूसरे के साथ कैसे जोड़ेंगे- यह गुण, यह योग्यता आपके अंदर होनी चाहिए। नहीं तो, समाजशास्त्र अलग विषय है और संगीत अलग विषय है। लेकिन, मैंने दोनों को जोड़ा और इसी विषय पर- 'चेंजिंग म्यूजिकल कल्चर ऑफ महाराष्ट्र' पर अपना डॉक्टरेट इंडियन काउंसिल ऑफ सोशल साईंस रिसर्च संस्था से किया। यह समाज शास्त्र की पढ़ाई का ही असर था कि मेरे अंदर यह समझ विकसित हुई। इस पढ़ाई ने मुझे समाज और उसके सरोकारों के विषय में बताया। और, उसके माध्यम से सांगीतिक गतिविधियों के विषय में भी बताया। म्यूजिकल मूवमेंट्स-सांगीतिक गतिविधियों के कारण ही तो रागदारी संगीत का विस्तार हुआ। संगीत के इतने सारे घराने बने। इस बात की तह तक मैं समाज शास्त्र के अध्ययन के माध्यम से ही पहुंचा। यह सोच-विचार का एक ठोस आधार प्रदान करता है। आप हवा में बातें नहीं कर सकते हैं। इसी अध्ययन ने मुझे यह भी सिखाया कि किस प्रकार के श्रोताओं-दर्शकों के सामने किस प्रकार के संगीत की प्रस्तुति करनी चाहिये? यह भी संभव हैं कि अगर मैंने समाज शास्त्र की जगह मनोविज्ञान या दर्शनशास्त्र की पढ़ाई की होती तो संगीत को किसी और दृष्टि से देखता।'

"आपके इस वक्तव्य से दो प्रश्न उभरते हैं। एक तो यह कि कलाकार और श्रोता-दर्शक के बीच का संबंध कैसा होना चाहिए? क्योंकि, इस संबंध के बीच एक सूक्ष्म-अति सूक्ष्म-लक्ष्मण रेखा भी होती है जिसे प्रायः अनदेखा कर दिया जाता है। 'पब्लिक जो चाहती है, हम तो वही देते है।' कहनेवाले कई सगीतकारों ने संगीत को बाजारु, धंधा बनाकर चौराहे पर बिकने के लिए रख दिया है। तो, दूसरी ओर कई ऐसे संगीतकार भी हैं जो जिस जनता से लाखों रुपये का पारिश्रमिक लेते हैं, उसी जनता की इच्छाओं, फरमाइशों की अवहेलना करने से तनिक भी नहीं हिचकते। वे कहते हैं कि हम अपने संगीत का स्वान्तः सुखाय प्रयोग करते हैं। मेरी दृष्टि में तो यह सरासर पाखंड है। अगर आप अपने संगीत का अपने सुख के लिए ही प्रयोग करते हैं तो घर में बैठकर करिए न! उसके लिए हम अपनी गाढ़ी-कमाई के पैसे आपको क्यों दें? पहले आप इस प्रश्न का उत्तर दे दीजिये, फिर दूसरा प्रश्न पूछता हूं।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यासजी कुछ देर तक सोचते हैं जैसे सही शब्दों का चयन कर रहें हो, फिर बोलते हैं- 'दोनों के बीच एक संतुलन होना बहुत जरुरी है। श्रोता-दर्शक की हर फरमाइश पूरी करने के लिए भी संगीतकार को तत्पर नहीं होना चाहिए। और, उनकी पूरी तरह अवहेलना भी नहीं होनी चाहिए। मैं अपनी ही बात कहता हूं। मैं खयाल गाता हूं, तराना गाता हूं, भजन गाता हूं। लेकिन, मैं ठुमरी नहीं गाता हूं..... वह मेरी परम्परा में भी नहीं है और उसे मैंने सीखा भी नहीं है। इसलिए अगर किसी सभा में मुझसे ठुमरी गाने के लिए कहा जायेगा तो विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर माफी मांगने के सिवाय मेरे पास और कोई रास्ता नहीं रहेगा। लेकिन, अगर मुझसे मेरी या मेरे परिवार की या मेरे घरानें की कोई खास बंदिश या राग सुनाने का आग्रह किया जाता है, और अगर मेरे पास समय है तो मैं सुनाऊंगा.....जरुर सुनाऊंगा-क्योंकि यह मेरा दायित्व है। मैं तो आकाशवाणी और दूरदर्शन के बंद स्टूडियों में भी रिकार्डिंग करते समय अपने सामने बैठे हजारों श्रोताओं, दर्शकों की कल्पनाएं करके ही गाता हूं। और, मेरा अपना अनुभव यह है कि इससे कला और अधिक निखरती है, प्रस्फुटित होती है। जब आपको यह पता होता है कि आपको सुनने के लिए, सराहने के लिए कोई सामने बैठा है तो आप उसे आनंदित करने के लिये, प्रभावित करने के लिए और अधिक प्रयास करते हैं जिससे आपकी कला और प्रभावी बनती है। लेकिन, यहीं एक बात मैं फिर से दुहराना चाहूंगा कि 'पब्लिक जो चाहेगी- हम वे सब सुनाएंगे' इस मत का भी समर्थक मैं नहीं हूं। हालांकि हम जनता को जनार्दन कहकर उनका सम्मान करते हैं। इसलिए उनकी अवहेलना की बात तो हम सोच भी नहीं सकते हैं। लेकिन, इसके बावजूद उनकी इच्छाओं को पूरा करने का प्रयास करते हुए भी-अपना भी एक न्यूनतम स्तर (मिनिमम स्टैंडर्ड) बनाए रखने का हर संभव प्रयास भी करते करते है। क्योंकि जनता में, कई तरह के, कई वर्ग के और कई स्तर के लोग होते हैं और सबकी इच्छाओं को पूरी कर पाना किसी भी कलाकार के लिए संभव नहीं होता है। एक और बात, किसी नई जगह, नए आयोजन में जाने पर हम उपस्थित दर्शक के स्तर को देखकर भी अपनी प्रस्तुति की शैली को बदलते हैं। कभी-कभी अपने गायन का सरलीकरण भी करते हैं। गंभीर आलाप और तेजतर्रार तानों से बचाकर भावपूर्ण गीत प्रकारों से भी उन्हें आनंदित करने का प्रयास करते हैं। इसलिए श्रोता और संगीतकारों के बीच एक संतुलित, मर्यादित और स्नेहिल संबंधों का पक्षधर हूं मैं।

मैं व्यासजी को पुनः उनके समाज शास्त्रीय अध्ययन की ओर मोड़ते हुए अपना अगला प्रश्न पूछता हूं- 'आपके महाराष्ट्र की धरती में आखिर वह क्या बात है कि गायन के सारे घरानें-उदाहरण-ग्वालियर, जयपुर, किराना आगरा और भेंडिबजार आदि बने तो अपने मूल स्थानों पर ही, किंतु पुष्पित और पल्लवित हुए महाराष्ट्र में? आपका समाज शास्त्रीय अध्ययन इस विषय में क्या कहता है?

'कोई भी आभिजात्य कला-क्लासिकल आर्ट् समाजिक, आर्थिक संरक्षण में ही आगे की ओर बढ़ती है। इसे स्थाई, सामाजिक संरक्षण की आवश्यकता पड़ती है विकसित होने के लिए। यह उस फूल की तरह है जिसे खिलने के लिये खाद भी चाहिए, पानी भी, हवा भी, सूरज की रोशनी भी और इन सबके साथ-साथ आपका स्नेहिल, भावनात्मक स्पर्श भी। जबकि, लोक और लोकप्रिय संगीत के लिये यह जरुरी नहीं है। वह अपने विकास का रास्ता स्वयं ढूंढ़ लेती है। इसलिए आभिजात्य कलाओं को संरक्षण देना समाज की जिम्मेदारी है। इसका आनंद लेने के लिये इसका ज्ञान होना भी बहुत जरुरी है। आज भी शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम के कितने टिकट बिकते हैं? प्रायोजकों के सहयोग से ही शास्त्रीय संगीत के अच्छे कार्यक्रम संपन्न हो पाते हैं। राजशाही खत्म होने के बाद कुछ सगीत प्रेमी धनी लोगों ने शास्त्रीय संगीत के कलाकारों को अपना आश्रय और संरक्षण प्रदान किया, अतः ये कलाकार वहीं बस गए। इसमें महाराष्ट्र आगे था। कई कलाकार कोलकाता में भी रहे, क्योंकि वहां भी उन्हें आश्रय और संरक्षण मिला। किराना घराने की एक शाखा उस्ताद अब्दुल करीम खां के माध्यम से महाराष्ट्र में ही विकसित हुई और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सवाई गंधर्व, भीमसेन जोशी तथा गंगूबाई हंगल जैसे अनेक स्वनामधन्य कलाकार वहां की मिट्टी में पैदा हुए। उ. अब्दुल करीम खां को स्वास्थ्य संबंधी कारणों से कुछ दिनों के लिए मिरज जाना पड़ा था, लेकिन, वहां उन्हें इतना मान-सम्मान मिला कि फिर वे वहीं के होकर रह गए। इसी तरह जयपुर-अतरौली घराने के प्रवर्तक उ. अल्लादिया खां को कोल्हापुर में इतनी प्रतिष्ठा मिली कि वे कोल्हापुर में ही बस गए और उनका नाम ही पड़ गया उस्ताद अल्लादिया खां कोल्हापुर वाले। कोल्हापुर में उस्ताद अल्लादिया खां की तो मिरज में उ. अब्दुल करीम खां की प्रतिमा उन्हें मिले सम्मान और यश का गान कर रही है। इसी तरह बदायूं के दो भाइयों उस्ताद छज्जू खां और नजीर खां ने मुंबई में रहकर अपनी गायन कला को एक नया आयाम देते हुए भेंडि बजार घरानें की स्थापना की। यह क्षेत्र आज मोहम्मद अली रोड के नाम से मशहूर है। इसी तरह ग्वालियर घरानें की भी एक लम्बी परंपरा वहां पं. बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर के माध्यम से विकसित हुई, जिसे उनके महान् शिष्य पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने अपने शिष्यों-प्रशिष्यों के माध्यम से देश के कोने-कोने में पहुंचा दिया। पलुस्करजी की परंपरा में मेरे पिता पं. नारायण राव व्यास, पं. विनायक राव पटवर्धन और पं. ओंकार नाथ ठाकुर तथा पंडित शंकर राव व्यास जैसे विख्यात गायक हुए तो प्रो. वी.आर. देवधर जैसे शास्त्रज्ञ भी। इतना ही नहीं कशालकरजी एवं विनयचंद्र मौद्गल्य जैसे महान संगीत प्रचारक भी इसी परंपरा में हुए।'

'राग, भाव, रस और बंदिश शास्त्रीय संगीत जगत का बड़ा ही विवादास्पद मुद्दा रहा है। जितने मुंह उतनी बातें-और हर किसी का अलग सुर। यह हमारा उत्तर भारतीय संगीत ही है कि यहां रागों को समय के साथ जोड़ा गया। आठों प्रहर के हिसाब से रागों का निर्धारण हुआ। भैरवी प्रातःकालीन राग है, जौनपुरी दोपहरकालीन, यमन संध्याकालीन तो दरबारी रात्रि कालीन। इतना ही नहीं नियम तो यहां तक है कि संध्या के शुरुआती समय में गाना है तो पूरिया धनाश्री गाइए और बाद में गाना है तो छायानट। गोधूलि वेला में गाना है तो मुलतानी। सुबह के बाद और दोपहर के पहले-जिसे अंग्रेजी में लेट मॉर्निंग कहते हैं-के लिये सारंग और बिलावल के कई प्रकार हैं। फिर, रागों के स्वभाव का भी निरुपण किया गया- विहाग और बागेश्री श्रृंगारिक राग हैं, मालकौंस और हिंडोल आदि में एक ओज और पौरुष का भाव है, तोड़ी और सोहनी में उदासी और करुणा है, मारवा का भाव वैरागी है, दरबारी का गम्भीर तो किरवानी और हंसध्वनि का भक्ति। लेकिन, कई बार बंदिशें, साहित्य अपने राग, उसके समय तथा भाव और रस से मेल रखते हुए नहीं दिखती हैं। आज संगीत को सिर्फ कला ही नहीं, विद्या के रुप में भी अपनाया जा रहा है। प्राथमिक कक्षाओं से लेकर विश्वविद्यालयों तक में इसकी पढ़ाई हो रही है, शोध हो रहे हैं। ऐसे में कब तक, आखिर! कब तक! हम संगीतार्थियों से यह कहकर अपना पीछा छुड़ाते रहेंगे कि ये पुराने विद्वानों की रचनाएं हैं, इसलिए हम इन पर कोई बयान नहीं देंगे?'

मैं प्रश्न को किसी पेंचदार तान की तरह विद्याधर व्यास की ओर उछालता हूं-जिसे वे किसी मुखड़े की तरह लपक लेते है- 'इसे मैं दूसरे रुप में देखता हूं। हमारे संगीत साधकों ने संगीत की अथक साधना और तपस्या करके रागों में प्राणों का संचार करते हुए उसका मानवीयकरण किया है, उसे स्थूल स्वरों के आरोह-अवरोह और पकड़ के रुप में ही नहीं, जीवित, जागृत, चैतन्य इंसान के रुप में देखा है, देवता के रुप में पूजा है। रागों के संदर्भ में संगीतकारों की भाषा पर ध्यान दीजिए जरा-राग को खड़ा करो! राग को साकार करो। राग की शक्ल तो दिखाओ! राग की चाल तो देखो! उसका स्वभाव तो देखो! राग से दोस्ती करो, प्रेम करो....फिर वह अपना परिचय खुद देगा।'

पं. व्यास को रुकते देख मैं उन्हें पुनः कुरेदता हूं- 'इसका अर्थ है कि आप प्रकारान्तर से जौनपुरी जैसे दोपहरकालीन राग में पायल की झनकार बैरनियां और दरबारी कान्हड़ा जैसे अर्धरात्रि के राग में घर जाने दे छाड़ मोरी बैंया जैसी रचनाओं को बिना किसी नानुकुर के स्वीकारने के लिए तैयार है? जबकि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वयं पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्करजी उपयुक्त रचनाओं को लेकर चिंतित रहा करते थे और उन्होंने इस दिशा में काफी काम भी किया है, जिसे उनके शिष्यों और अनुयायियों ने भी आगे बढ़ाया। आपके बड़े चाचा पं. शंकर राव व्यास और पिता पं. नारायण राव व्यास ने भी इस दिशा में काफी काम किया है.....'

मंच पर जब दो गायक या दो वादक एक साथ युगल गायन या वादन के लिए बैठते हैं तो कई बार ऐसा होता है कि अपने साथी कलाकार के किसी तान या तिहाई से प्रेरित होकर दूसरा कलाकार पहले की रचना समाप्त होने के पूर्व ही अपनी रचना शुरु कर देते है। कुछ उसी अंदाज में प्रश्न समाप्त होने के पूर्व ही व्यासजी उत्तर देना शुरु कर देते हैं- 'मैंने भी की हैं रचनाएं, संगीत संरचनाएं। लेकिन, उससे अलग हटकर आपकी बात का उत्तर मैं दो तरह से दे सकता हूं। एक समान्य उत्तर तो यह है कि किसी नई नवेली दुल्हन के लिए उसके पायल की झनकार कभी भी बैरन बन सकती है। लेकिन, मैं इस बात का उत्तर दूसरी तरह से देना चाहता हूं। जैसा कि मैं अभी कह रहा था कि हमने राग को एक इंसान के रुप में देखा है, इसलिए उस राग की विभिन्न रचनाओं और बंदिशों को विभिन्न प्रकार के वस्त्र के रुप में देखते है, उदाहरण के लिए आपको ही लेते हैं। आप किसी कार्यक्रम के लिए जा रहें हैं- बढ़िया धोती कुर्त्ता, गले में अंगवस्त्रम, सिर पर साफा पहनकर! एक सप्ताह बाद आप किसी फाईव स्टार होटल में किसी उद्योगपति द्वारा अपने विवाह की वर्षगांठ के उपलक्ष्य मे दी गई पार्टी में शामिल होते है- थ्री पीस सूट और टाई में। दो दिन बाद अचानक आपसे कोई मिलने आ जाता है, और वह आपको बिल्कुल साधारण कुर्ते-पैजामें में देखता है, जबकि, अगले दिन आप समुद्र तट पर अपने बच्चों के साथ तैराकी के पोशाक में दिख जाते हैं। इसका क्या अर्थ हुआ? इसका अर्थ यह बिल्कुल नहीं है कि आप बदल गए, आपके स्वभाव बदल गए, आप का आचरण बदल गया या आपकी आत्मा बदल गई! इसका अर्थ सिर्फ यह हुआ कि यदा-कदा आपका बाह्य आवरण बदलता रहता है, जो कि एकरसता की जड़ता को तोड़ने के लिए जरुरी भी है। और, यह मात्र बंदिशों से ही नहीं होता है। ताल और लय से भी होता है। दरबारी में अगर आप द्रुत लय की कोई बंदिश या तराना जैसी रचना गाएंगे तब भी उसकी गंभीरता टूटेगी।'

व्यासजी अपनी बात को समाप्त करते-करते अचानक पीछे की ओर मुड़ते हैं। वैसे भी खयाल गायक अंतरा की समाप्ति के बाद स्थाई पर आते ही है- 'थोड़ी देर पहले आप कला और विद्या की बात कर रहे थे। उसके उत्तर में मैं यह कहना चाहता हूं कि विद्या बाहर से अंदर की ओर आती है, जबकि, कला अंदर से बाहर की ओर जाती है। और, इस बात को जब संगीत के संदर्भ में कहा जाता है तो मैं यह भी कहना चाहता हूं कि भारतीय शास्त्रीय संगीत में राग और ताल की जो परिकल्पना है, वह विश्व संगीत में अनोखी और अनूठी है। बाकी सभी जगहों पर स्वर और लय है, जबकि, हमारे यहां स्वर और लय के साथ-साथ राग और ताल भी हैं। और यहीं अपने लम्बे अध्यापकीय अनुभव के आधार पर यह भी बताना चाहता हूं कि राग और ताल तो सिखाया जा सकता है, किंतु स्वर और लय इंसान ऊपर से सीखकर आता है।'

उत्तर भारत के कम लोग जानते है कि पं. विद्याधर व्यास एक बहुत ही अच्छे अभिनेता भी हैं। मराठी संगीत नाटकों में उनके अभिनय और मराठी गीतों को काफी सराहना मिली है। कटियार कालजात घुसली (अर्थात् लागत करेजबा कटार) नामक इस नाटक का मंचन लगभग 250 बार हो चुका है जिसमें नायक सदाशिव की भूमिका उन्होंने निभाई है। इसी प्रकार अपने घर में पुकारने के नाम- अतुल व्यास-के नाम से इन्होंने अनेक मराठी संगीत नाटकों को अपना कंठ स्वर भी प्रदान किया है। केंद्रीय संगीत नाटक अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित पं. व्यास ने संगीत को गुरु शिष्य परम्परा के अंतर्गत संगीत सीखा है, जहां गुरु के कथन को ब्रह्मवाक्य माना जाता था, और उनसे किसी भी प्रकार का प्रश्न पूछना अनुचित माना जाता था। उन्होंने 16 वर्ष की उम्र से ही अर्थात् 1960 से अपने गायनाचार्य पिता पं. नारायण राव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यास द्वारा 1937 में स्थापित व्यास एकेडमी ऑफ इंडियन म्यूजिक में सिखाना शुरु कर दिया था। 1968 में ये इसके सचिव भी बने। इसके बाद जयपुर स्थित राजस्थान संगीत संस्थान में इन्होंने प्राचार्य पद को 1973 से 1984 तक सुशोभित किया। 1984 में इन्होंने मुंबई विश्वविद्यालय के संगीत विभागाध्यक्ष पद को स्वीकारा और संगीत विषय पर अनेक सार्थक तथा ठोस कार्य किया। इसके बाद लखनऊ के भातखंडे संगीत संस्थान के उपकुलपति और आई.टी.सी. संगीत रिसर्च अकादमी के एक्जक्यूटिव डायरेक्टर पद को सुशोभित करने वाले पं. व्यास आज भी अपनी पैतृक संस्था व्यास एकेडमी में नयी पीढ़ी के संगीतार्थियों को प्रशिक्षित कर रहें हैं। लेकिन, आज समय बदल गया है। ऐसे में यह प्रश्न स्वाभाविक हो जाता है कि एक गुरु के रुप में ये अपने शिष्यों से क्या अपेक्षा रखते हैं?

व्यासजी कहते हैं- 'देखिये, मैं ने सैकड़ों लोगों को सिखाया है। और, हर किसी के सीखने का उद्देश्य अलग होता है। इसलिये, जो जिस ढंग से सीखना चाहता है, जिस उद्देश्य के लिये सीखना चाहता उसे हम उसी के अनुसार उसे सिखाते हैं। शायद यही सही भी है और बदलते समय की मांग भी। कुछ लोग कलाकार बनने के लिये मेरे पास आते हैं.... वे इत्र की तरह मुझसे इस कला की सूक्ष्म बारीकियों को आत्मसात् करते हैं। कुछ लोग इसलिये आते हैं कि उन्हें कुछ परीक्षायें आदि उत्तीर्ण करनी होती हैं। वे डिग्री लेकर कहीं नौकरी पाने की कोशिश में रहते हैं। वे हाथ में रखे सुपारी की तरह इसे मुझसे ग्रहण करते हैं। लेकिन, लगातार प्रश्न पूछने के लिये मैं अपने सभी शिष्यों को प्रेरित और प्रोत्साहित करता रहता हूं, और कहता हूं कि तीन तरह के प्रश्न मुझसे भी पूछो और खुद से भी पूछो तभी विशय की तह तक पहुंच पाओगे, नहीं तो अंधेरे में भटकते रहोगे।'

'वे तीन तरह के प्रश्न कौन से हैं?' मैं तह तक जाने की कोशिश करता हूं।

'यह क्या है ?' व्यासजी बताते हैं- 'जो भी चीज हम सीख रहें हैं, उसके विशय में जानना बहुत जरुरी है। जैसे हम सगीत सीख रहें है तो संगीत क्या है? राग क्या है? स्वर क्या है? लय क्या है? ताल क्या है? आदि-आदि। केवल ताल सीख लेना ही पर्याप्त नहीं है। ताल क्या है? यह जानना भी आव-यक है। फिर अगला पड़ाव आता है प्रश्न का- कैसे है? इसे कैसे करते हैं? यह होता कैसे है ? इससे व्यक्ति की कार्य कुशलता उभरती है, क्षमता बढ़ती है। और, तीसरा पड़ाव है- क्यो है? इसका कारण क्या है? उद्देश्य क्या है? मेरा मानना है कि इन तीन बिंदुओं पर यदि लोग गंभीरता से विचार करे तो अपने विषय की गहराई तक जा पहुंचेगे।'

केंद्रीय संगीत नाटक अकादेमी सम्मान सहित संगीत कला रत्न, संगीत भुवन भस्कर सम्मान, संगीत शिरोमणि, गायन चक्र चूड़ामणि, आचार्य बृहस्पति संगीत सेवा सम्मान, नवरस संगीत वाचस्पति, स्वर सागर संगीत पुरस्कार, पुत्तराज गवई सम्मान, जितेंद्र अभिषेकी पुरस्कार और उस्ताद चांद खां अवार्ड सहित कई अन्य मान-सम्मानों से विभूशित, देश-विदेश की अनेक संस्थाओं से संबद्ध, अनेक प्रतिष्ठित राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय मंचों को अपने स्वर माधुर्य से रसगुंजित कर चुके पं. व्यास के शिष्य और प्रशंसक देश भर में फैले हुए हैं। दर्जनों व्यावसयिक संगीत कम्पनियों ने इनके भावपूर्ण गायन की ध्वनि मुद्रिकायें भी तैयार की हैं। लेकिन, वह कौन सा मंच और कौन सा कार्यक्रम था जहां गाकर इन्हें खुद अच्छा लगा... आत्मसंतुष्टी मिली?

व्यासजी मुस्कुराते हैं, एक रहस्यमयी मुस्कान। फिर कहते हैं- 'इस प्रश्न का उत्तर मैं दूसरी तरह से दूंगा, लेकिन उसके पहले एक घटना सुनाता हूं-सन् 1964 में शिमला में समर फेस्टिवल में मेरे पिताजी गायनाचार्य पं. नारायण राव व्यास को आमंत्रित किया गया था। कार्यक्रम कुछ इस तरह का बना कि गर्मी के दिन हैं, और शिमला जा ही रहे हैं तो कुछ और और दिन रुकेंगे वहां। उन्हीं दिनों मेरी बी.ए. की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परीक्षा संपन्न हुई थी तो विचार यह हुआ कि साथ में मैं भी चला जाऊं। थोड़ा मेरा भी घूमना-फिरना हो जायेगा और पिताजी का सहयोग भी हो जायेगा। हमलोग जब शिमला पहुंचे तो वहां महाराष्ट्र मंडल नामक एक संस्था थी जो शायद अब भी होगी- उसके वरिष्ठ सदस्य लोग पिताजी से मिलने आये और उन लोगों ने कहा कि हम अपनी संस्था की ओर से आपका सम्मान करना चाहते हैं। पिताजी ने स्वीकृति दे दी। फिर, उन लोगों ने कहा कि सम्मान समारोह के बाद आपका गाना भी थोड़ी देर हो जाए। लेकिन, इस पर पिताजी असमर्थता व्यक्त करते हुए बोले कि- 'इसके लिए माफी चाहूंगा। क्योंकि, यहां जिन लोगों ने मुझे आमंत्रित किया है। इतना पैसा खर्च किया, इतनी व्यवस्था की, उनके कार्यक्रम के पूर्व उसी शहर में दूसरा कार्यक्रम कर लेना मेरे सिद्धान्त के खिलाफ है।' पिताजी की बात महाराष्ट्र मंडल के सदस्यों को भी उचित लगी। वे बोले- 'बात तो आपकी सौ टके सही है।' उसी समय उस कमरे में मैंने प्रवेश किया। पिताजी ने परिचय कराया कि यह मेरा बेटा है। मैं ने सबको नमस्ते किया। इतने में महाराष्ट्र मंडल के एक सदस्य बोल पड़े- 'आपका यह बेटा भी तो गाता होगा?' मैं तब तक वैसे तो संगीत अलंकार (एम.ए. के समकक्ष) की परीक्षा दे चुका था। लेकिन, संगीत को लेकर न तो बहुत अधिक गंभीर मैं था और न तो मेरे संगीत को लेकर घर वाले ही गंभीर थे। चूंकि घर में कला थी इसलिए सीखना-सिखाना चल रहा था। पिताजी थोड़ी असमंजस की हालत में बोले- 'हां, थोड़ा बहुत गाता तो है।'

'तो यह गा लेगा वहां।' महाराष्ट्र मंडल के सदस्यों ने जैसे निर्णय सुना दिया।

'तुम गाओगे वहां?' पिताजी ने मुझसे पूछा।

'हां गा लूंगा।' मैं ने भी तपाक से उत्तर दे दिया।

अब तो पिताजी द्वारा इनकार करने का कोई प्रश्न ही नहीं था। लेकिन, वे मन ही मन आशंकित थे कि पता नहीं मैं क्या गाऊंगा, कैसा गाऊंगा ?

खैर! कार्यक्रम हो गया और अच्छा हुआ। सबको उम्मीद थी कि मैं 30-40 मिनट गाऊंगा। लेकिन, उस शाम मैं ने करीब पौने तीन घंटे गाया और जमकर गाया। इस तरह का अवसर पहली बार मिला था, अतः जो कुछ- जितना भी आता था सब कुछ सुना देना चाहता था। दर्शकों की बार-बार गूंजती तालियां भी मुझे प्रोत्साहित कर रहीं थीं।

कार्यक्रम खत्म हुआ। हमलोग गेस्ट हाउस में आ गए। बाहर मैं कुछ स्थानीय लोगों से बातें कर रहा था कि पिताजी ने किसी को भेजकर मुझे बुलवाया। मैं समझ गया अब डांट पड़नी है। लेकिन, जाना तो था ही। मैं डरते-डरते उनके पास पहुंचा- मेरी गर्दन झुकी हुई थी.... वहां कुछ और लोग भी बैठे हुए थे। अचानक पिताजी बोले- 'अरे! तू तो गाता है।'

मैंने चौककर गर्दन उठाया और उनकी ओर देखा। उनके चेहरे पर खुशी की चमक थी। उनके चेहरे पर वह खुशी देखकर मुझे जिस आनन्द की अनुभूति हुई वह वर्णनातीत है। इसलिए उस कार्यक्रम को मैं अपने जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यक्रम मानता हूं, और शायद यहीं कारण था कि मैं ने बाद में संगीत को कैरियर के रुप में चुनने का निर्णय लिया।

आठ सितम्बर 2019 को पूरा देश आपका 75वां जन्मदिन अत्यन्त धूमधाम से मनाने जा रहा है। इस अवसर पर दिल्ली में एक विशेष कार्यक्रम भी हो रहा है और 'नाद रंग' पत्रिका के आप पर केंद्रित विशेषांक का लोकार्पण भी। आप जब कभी पीछे मुड़कर देखते हैं तो अपने इन 75 वर्षों की उपलब्धियों पर मुस्कुराने और इतराने का कितना मन करता है? मैं पूछता हूं।

'जरा भी नहीं।' व्यासजी का सुरीला स्वर किंचित रुखा और उलाहना भरा हो जाता है- 'इन स्वरों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को, रागों को, संगीत को रिझाने का, मनाने का कितना प्रयास करता हूं कि कोई एक राग तो मेरा अपना बन जाए-जैसे उस्ताद अमीर खां का मारवा और दरबारी था, पं. भीमसेन जोशी का पूरिया और शुद्ध कल्याण था, मेरे पिताजी पं. नारायण राव व्यास का मालगुंजी और विभास था। लेकिन अभी तक किसी भी राग को अपना नहीं बन पाया। जबकि, रात-रात भर बैठकर इन्हें मनाने की, साधने की कोशिश करता हूं। कभी-कभी निकटता का अनुभव भी होता है, लेकिन, फिर किसी-शरारती नटखट बालक की तरह ये छिटककर दूर खड़े हो जाते हैं, और, मैं इन्हें फिर से मनाने की कोशिश करने लगता हूं। मुझे तो लगता है कि इन्हें साधने में अभी लगभग 75 वर्ष और लग जाएंगे।'

'मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वे आपको 75 वर्ष की आयु और प्रदान करें, ताकि आपकी मनोकामना पूर्ण हो सके।' मैनें कहा।

उसी समय व्यासजी की पत्नी सुप्रसिद्ध सितार वादिका प्रो. सुनीरा कासलीवाल व्यास सुस्वादु नाश्ते की ट्राली के साथ कमरे में प्रवेश करती हैं और हमें अपना रिकार्डर बंद कर देना पड़ता है। पति चाहे कितना ही बड़ा व्यक्ति क्यों न हो घर में पत्नी की ही चलती है।

(विशेष सहयोग- मनमोहन डोगरा और उज्जवल शंकर मिश्र)

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक चौमुखा व्यक्तित्व

कृष्णा बिष्ट

लगभग 1975 में दिल्ली विश्वविद्यालय के संगीत विभाग द्वारा गायनाचार्य पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के प्रमुख शिष्य पं. नारायण राव व्यास का कार्यक्रम आयोजित किया गया था। गायन में साथ दिया था उनके युवा सुपुत्र विद्याधर व्यास ने। दोनों के गायन में इतनी एकरूपता थी कि कभी-कभी भ्रम हो रहा था-पिता गा रहे हैं यां पुत्र! यह था विद्याधर व्यास जी से मेरा प्रथम परिचय। आगे चलकर आपसे व्यक्तिगत मित्रता हुई। समय-समय पर विचारों के आदान-प्रदान के माध्यम से आपके जीवन के विभिन्न पहलुओं को जानने का अवसर मिला। विद्याधर जी-जैसा कि उनके नाम में अंकित है-अनेक विद्याओं में पारंगत हैं। सर्वप्रथम आपकी गायन शैली पर निजी विचार रखने का प्रयास करूंगी।

मेरे अनुभव के अनुसार समय के साथ पं. विद्याधर व्यास जी की गायकी में परिवर्तन आया है। जैसे-जैसे आप परिपक्व हुए आपकी गायकी में भी स्वतंत्र अभिव्यक्ति दिखने लगी। पिताश्री की ग्वालियर (पं. विष्णु दिगम्बर परंपरा) गायकी को अक्षुण्ण रखते हुए, अष्टांग गायकी के तत्त्वों को आप अपने मिजाज के अनुसार प्रस्तुत करते हैं-जैसे राग के प्रत्येक विस्तार क्षेत्र को महत्व देते हुए बढ़त करना। आपके बहलावे का भाग प्रशस्त और रोचक होता है। लय के साथ खिलवाड़ करते हुए सम पर आने में आप सिद्ध हस्त हैं। अति द्रुत लय में तरानों की प्रस्तुति विद्याधर जी के गायन का विशेष आकर्षण है। इस परंपरा के वरिष्ठ कलाकार पं. विनायक राव पटवर्धन एवं पंडित नारायण राव व्यास ख्याल के अतिरिक्त तराना गायन के लिए प्रसिद्ध थे जिनको सुनने का अवसर मुझे अनेक बार मिला है। विद्याधर जी के तराना गायन में उनकी छाप तो है ही इसके अतिरिक्त वे इस विद्या को अपने रंग में रंग देते हैं। पाठक मेरे मन्तव्य का आशय समझ गए होंगे। पिताश्री के पदचिह्न पर चलते हुए अपने कार्यक्रम का समापन भक्ति रस से निश्चित पदों से करते हैं जिनमें आध्यात्मिकता के साथ-साथ शास्त्रीयता भी होती है।

ग्वालियर घराने में प्रायः पारंपरिक रचनाएं गाई जाती हैं। गुणी पिता के साहचर्य से पं. विद्याधर जी को उत्तराधिकार में प्रचुर संख्या में बंदिशें प्राप्त हुई हैं। किन्तु सृजन की प्रतिभा के फलस्वरूप आपने नवीन रचनाएं भी की है जिनमें से अधिकांश टकसाली बंदिशों के समकक्ष हैं। उपयुक्त अवसरों पर तत्काल मौलिक रचना करने में भी आप दक्ष हैं।

एक प्रतिष्ठित कलाकार होने के साथ-साथ व्यास जी संगीत के शास्त्र पक्ष में भी रुचि रखते हैं। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में पं. विद्याधर व्यास एक सुपरिचित नाम है। आप प्रखर वक्ता हैं-अपने सारगर्भित विचार स्पष्टता से व्यक्त करते हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय के संगीत विभाग द्वारा आयोजित अनेक संगीत गोष्ठियों में प्रोफ़ेसर व्यास ने भाग लिया है। कभी भी अति व्यस्तता के होते हुए भी हमारे निमंत्रण को नहीं नकारा। मुझे अभी भी स्मरण है कि संगीत रत्नाकर पर आधारित राष्ट्रीय संगोष्ठी के एक सत्र की मैं अध्यक्षता कर रही थी जिसमें व्यास जी मुख्य प्रतिभागी थे। आप सीधे 'एयरपोर्ट' से सर शंकर लाल हॉल, दिल्ली विश्वविद्यालय, पहुंचे तथा व्याख्यान प्रस्तुत करके बिना भोजन किए वहीं से 'फ्लाईट' के लिए रवाना हो गए। उस दिन सभागार अंतिम पंक्ति तक भरा हुआ था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्याधर जी के मौलिक चिन्तन प्रसूत विचारों से श्रोताओं को विशेष लाभ मिला और उनका सुमधुर गायन सुनकर बहुत आनन्द हुआ।

मैंने पं. व्यास की नाट्य संगीत पर भी सोदाहरण वार्ता सुनी है जिसमें आपने नाट्यसंगीत के अनेक प्रकार बड़ी सहजता से प्रस्तुत किए थे। खोजने से पता चला कि विद्याधर जी अपने युवा अवस्था में अतुल व्यास नाम से मराठी संगीत नाटकों में अभिनय किया करते थे।

संगीत कला में पारदर्शिता के साथ-साथ पं. विद्याधर व्यास 'एकेडेमिक्स' में भी पीछे नहीं रहे है। उन्होंने सोशियोलॉजी विषय से बम्बई यूनिवर्सिटी से एम.ए. किया है। अपने योग्यता के कारण अनेक उच्चपदों पर शोभायमान रहे हैं और प्रत्येक क्षेत्र में अपना समुचित योगदान दिया है। साथ ही अपने पिताश्री द्वारा स्थापित 'व्यास संगीत विद्यालय' का भी विद्याधर जी बड़ी जतन से संचालन करते आ रहे हैं। अभी हाल ही में नवम्बर 2017 में इस विद्यालय ने 80 वर्ष पूर्ति का महति आयोजन किया था।

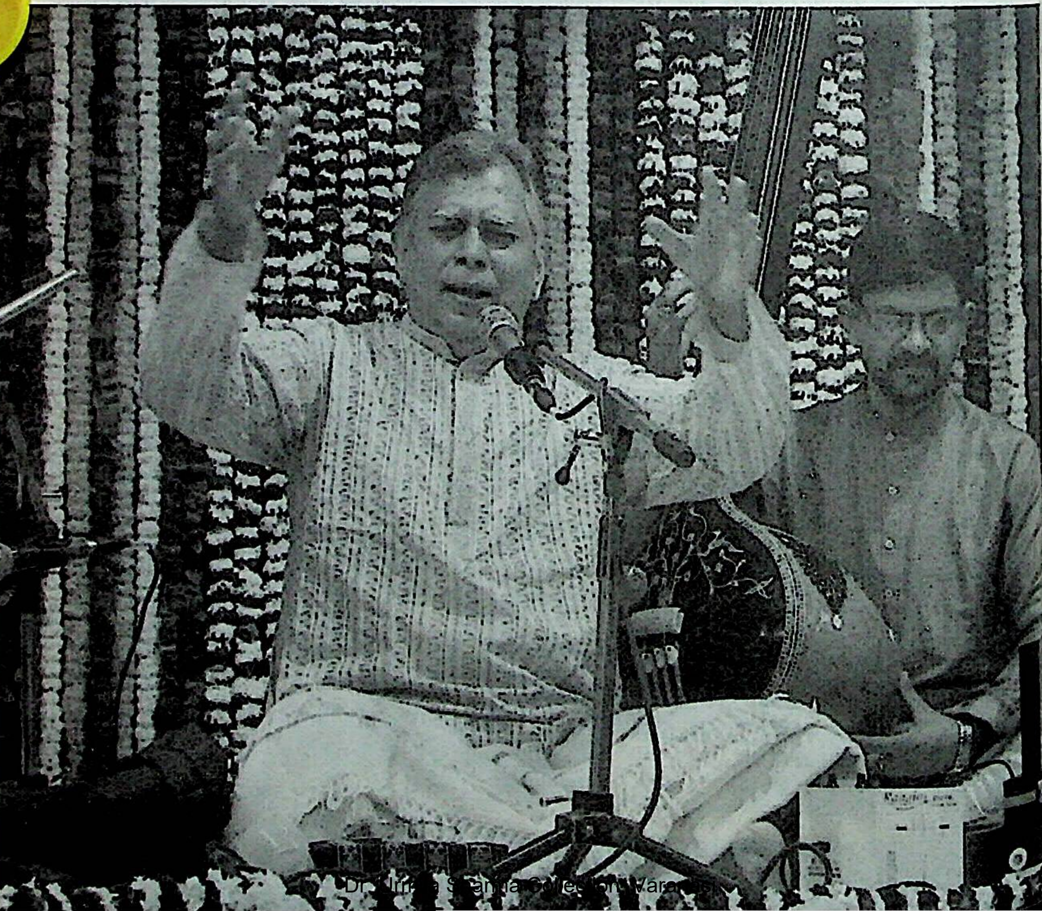

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ अविस्मरणीय यादें

स्वतंत्र शर्मा

समय कैसे बीत जाता है। अभी कल की ही बात है, जब पंडित जी के 60 वर्ष पूर्ण होने पर सितम्बर 2004 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग में हमने उनकी षष्टप्रदी बड़ी धूमधाम से मनाई थी। उस दिन पंडित जी के सुमधुर गायन एवं अन्य अनेक सांस्कृतिक प्रस्तुतियों ने कार्यक्रम को एक जलसे का रूप दिया था। विश्वविद्यालय परिवार के कुलपति से लेकर अनेक वरिष्ठ शिक्षकों, नगर के संगीतप्रेमियों एवं विद्यार्थियों का वहां मजमा सा था। षष्टप्रदी का वह आयोजन इतना भव्य था कि आज बरबस 'अमृत महोत्सव' के आयोजन पर रह रह कर याद आ रहा है।

व्यास साहब उत्कृष्ट कलाकार होने के साथ-साथ एक उत्तम शिक्षक भी हैं, जो उनको पलुस्कर परम्परा से विरासत में मिला है। अतः एक शिक्षक कलाकार का सम्मान विश्वविद्यालय परिसर में जब आयोजित हुआ तो विद्यार्थियों के लिए अनुकरणीय था। आज भी वह सब यादें तरोताजा हैं। आज भी व्यास साहब उसी तरह भव्य एवं आकर्षक व्यक्तित्व और सुमधुर गायन के साथ हम सबके बीच प्रेरणास्रोत हैं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संगीत विभाग में वर्ष 2002 से 2010 के बीच व्यास साहब का निरन्तर आना हुआ। राष्ट्रीय संगोष्ठियों, पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों, कार्यशालाओं- सभी में आपका गायन एवं व्याख्यान एक अविभाज्य अंग था। नगर में उस समय उनके प्रशंसक शान्ताराम कशालकर, पंडित रामाश्रय झा 'रामरंग', एस.एन. वर्मा, राजीव दवे के साथ-साथ असंख्य संगीतप्रेमी थे। प्रयाग संगीत समिति में अनेकों सम्मेलनों में उनका गायन, आकाशवाणी में अतिथि कलाकार के रूप में उनकी रिकार्डिंग और शहर में अनेक आमंत्रण-कुछ ऐसा माहौल उस समय बन गया था। विश्वविद्यालय में आपने अपने व्याख्यानों/प्रस्तुतियों से जो ज्ञान विद्यार्थियों को दिया, वह आज भी विद्यार्थी याद करते हैं।

मुझे याद है कि वर्ष 2005 में इलाहाबाद में जनवरी माह में 'कोल्ड वेव' आई हुई थी। पुनश्चर्या पाठ्यक्रम का आयोजन संगीत विभाग में सुनिश्चित था। व्यास साहब उसमें एक विषय विशेषज्ञ के रूप में आमंत्रित थे। मौसम के अनुकूल न होने पर भी, आप इलाहाबाद आए और तीन दिन तक इसमें मंच पर सिर पर टोपी लगाकर अपना प्रदर्शन-व्याख्यान देते रहे। वैसी कड़ाके की सर्दी मुम्बईवासियों के लिए ज्यादा कष्टकारी थी। आपकी संगीत के प्रति निष्ठा, शैक्षणिक संस्थाओं के प्रति ईमानदारी, समर्पण और प्रतिबद्धता आज कहां देखने को मिलती है?

उत्तम शिक्षक, श्रेष्ठ कलाकार और कुशल प्रशासक के रूप में आपने मुम्बई विश्वविद्यालय, भातखण्डे संगीत विश्वविद्यालय में कुलपति के पद पर रहते हुए शिक्षा के स्तर को ऊंचा उठाने एवं संस्था के विकास में अहम योगदान दिया। भातखण्डे संगीत विश्वविद्यालय में आपने अनेक शिक्षकों की नियुक्ति के साथ साथ रिकार्डिंग स्टूडियो का निर्माण करवाया। राष्ट्रीय सेमिनारों एवं अनेक उच्च स्तरीय कार्यक्रम आयोजित किए और विश्वविद्यालय का शैक्षणिक स्तर सुदृढ़ किया, संगीत के अनुकूल वातावरण निर्मित किया। उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, सांस्कृतिक कार्य विभाग एवं उत्तर मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र में आपके शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम, कार्यशालाएं एवं रिकार्डिंग होती रही। यह 90 के दशक की बातें हैं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसके बाद तो व्यास साहब का योगदान और बढ़ता ही रहा। सांस्कृतिक केन्द्र की ओर से ग्वालियर में कला बीथिका में आपका गायन था, शहर के सभी संगीतप्रेमी और बाला साहब पूंछवाले आदि सभी आपके कार्यक्रम में आए थे। मुझे आज भी आपके गाए 'गौड़ मल्हार' राग की बंदिश ध्यान में है। कार्यक्रम बहुत सफल था। आपकी मधुर, सोजपूर्ण आवाज और शास्त्रीयता से पूर्ण शुद्ध रागदारी रसिकजनों के अंतर में अमिट छाप छोड़ गई।

किसी भी संगीतज्ञ के कैरियर में तीन पड़ाव होते हैं। शिक्षक, कलाकार और प्रशासक- व्यास साहब ने तीनों ही रूपों में अपनी प्रतिभा का श्रेष्ठ प्रदर्शन किया और सृजनात्मक दृष्टिकोण से अपने व्यक्तित्व का विकास किया। गंभीर व्यक्तित्व, अल्पभाषी, मृदु व सरल व्यवहार से आपने सभी को सम्मोहित किया।

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीतज्ञ पं. पलुस्कर परम्परा में अपने पिता गायनाचार्य पं. नारायण राव व्यास से आपने संगीत शिक्षा प्राप्त की। ख्याल, तराना, नाट्य संगीत, भजन गायकी में आप सिद्धहस्त हैं। संगीत महर्षि पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर की।

परम्परा में दीक्षित, आपकी गायकी में मौलिक एवं विचारशील सोचे के साथ, रस एवं सौन्दर्य से पूर्ण कठिन रियाज परिलक्षित होता है। बंदिश/राग की सौन्दर्यात्मक बढ़त तथा घरानेदार बंदिशों के गायन से आपका प्रदर्शन अत्यन्त प्रभावशाली बन जाता है। आपकी आवाज में शब्द, काव्य, सुर, सुर रचना-भाव, राग-सौन्दर्य, लयकारी सभी उनकी गायकी के अंग हैं।

महाराष्ट्र के कोल्हापुर में जन्मे पंडित व्यास जी की रागों को लोकप्रिय बनाने में विशेष भूमिका रही है। संगीत का प्रचार-प्रसार करने में आपके परिवार का विशेष योगदान है। आपको संगीत की समृद्धशाली परम्परा विरासत में मिली, जिसको आपने आगे बढ़ाया। पंडित जी के ही शब्दों में 'मेरे पिताजी स्वर साधना करते थे और मेरा बचपन से ही श्रवण संस्कार ज्यादा हुआ।' कैरियर के अन्य अनेक सुनहरे अवसर थे, विदेश में आपका दाखिला हो गया था, किन्तु पंडित जी ने संगीत को ही अपना कैरियर चुना और आज आप देश के सर्वश्रेष्ठ, गुणी-विद्वान गायकों में से एक हैं। कठोर अनुशासन में उन्होंने संगीत शिक्षा ली। गुरु और प्रशासक के साथ आप श्रेष्ठ कलाकार के रूप में राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्माननीय हैं।

पं. व्यास जी के मत से संगीत शिक्षा के लिए गुरु-शिष्य परम्परा ही आदर्श हैं। वे रागों की असीम शक्ति में विश्वास करते हैं। आपने संगीत शास्त्र एवं क्रियात्मक दोनों ही पक्षों पर समान अधिकार प्राप्त कर विद्वत संगीतज्ञों की शृंखला में विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में आप डी.फिल की उपाधि से सुशोभित हैं। उनको मंच प्रस्तुतियों के लिए विशेष तौर पर सराहा जाता है, चाहे वह आगरे का ताज महोत्सव हो, ग्वालियर का तानसेन समारोह, प्रयाग संगीत समिति का समारोह हो या विदेश में उनकी प्रस्तुति। आपने देश के सभी बडे संगीत समारोहों में शिरकत की है। आपके अनेक कैसेट, सीडी संगीत जगत को अनमोल देन है। संगीत पत्रिकाओं में आपके विद्वतपूर्ण आलेख प्रकाशित हुए हैं। संगीत रिसर्च अकादमी-मुंबई, भारत भवन-भोपाल तथा एसएनडीटी विश्वविद्यालय-मुंबई से आपका विशेष जुडाव रहा है।

पंडित जी व्यास एकेडमी आफ भारतीय संगीत-मुंबई के अध्यक्ष ट्रस्टी हैं जहां अनगिनत संगीत विद्यार्थी संगीत शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। आपकी दिल्ली में भी लगातार कार्यशालाएं होती रहती हैं, अनेक विद्यार्थी लाभान्वित हो रहे हैं। आपकी अर्धांगिनी सुनीरा कासलीवाल स्वयं सितार की श्रेष्ठ वादिका, दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर तथा संगीतशास्त्री के रूप में संगीत क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहुआयामी व्यक्तित्व

मुकुन्द भाले

पण्डित विद्याधर व्यास जी के नाम और उनकी गायनपटुता से तो मैं अनेक वर्षों से परिचित था ही पर सन् 2005 में जब वे भातखण्डे संगीत विश्वविद्यालय, लखनऊ के कुलपति थे तब दो वर्षों तक उनके साथ कार्य करने का सुखद अवसर भी प्राप्त हुआ। इन दो वर्षों के दौरान उनके बहुआयामी व्यक्तित्व को जानने-समझने का पर्याप्त मौक़ा मिला।

सुदर्शन व्यक्तित्व के मालिक पंड़ित व्यास, पहली मुलाकात में ही सामने वाले पर अपनी एक अलग छाप छोड़ने में सफल हो जाते हैं। लगभग छह फुट ऊंचे, गौरवर्ण, चौड़ा ललाट, सुडौल देहयष्टि और मधुर आवाज़ के धनी विद्याधर जी, गायन में पंड़ित पलुस्कर जी की गान-परम्परा की महत्वपूर्ण कड़ी हैं।

श्रेष्ठ और वरिष्ठ गायक तथा संगीत शास्त्री व्यास जी एक कुशल प्रशासक होने के साथ-साथ प्रभावी वक्ता भी हैं। अपने विचारों को स्पष्ट और प्रभावी ढ़ंग से रखना और दूसरों से उन्हें मनवा लेने की कला, पंड़ित जी को अन्यों से अलग करती है। गायक के रूप में तो वे श्रेष्ठ हैं ही, संगीत शास्त्र पर भी उनकी गहरी पकड़ है। राग स्वरूपों पर वे घण्टों तक सार्थक चर्चा कर सकते हैं। अपने विचारों को समग्रता के साथ प्रस्तुत करने का कौशल उन्होंने सायास अर्जित किया है। उनके पठन-पाठन का दायरा अत्यन्त विस्तृत है और इसीलिए वे संगीत से इतर विषयों यथा-साहित्य, राजनीति, खेल या अन्य सम-सामयिक विषयों पर अपनी सटीक टिप्पणियों से आपको अचंभित और प्रभावित कर सकते हैं।

गायन .में पण्डित पलुस्कर की श्रेष्ठ परम्परा का निर्वहन करते हुए उन्होंने अपना एक अलग मुक़ाम हासिल किया है। मराठी संगीत नाटकों में, विशेषतः 'कट्यार कायनात घुसली' में, अन्य श्रेष्ठ गायक अभिनेताओं के साथ उन्होंने अपनी भूमिका प्रभावी ढ़ंग से प्रस्तुत कर प्रशंसा अर्जित की है। देश-विदेश में उन्होंने अनगिनत कार्यक्रमों और परिसंवादों में अपनी उपस्थिति दर्ज करायी है। सामान्यतः पहली मुलाक़ात में उनकी धीर गंभीर प्रकृति से प्रभावित व्यक्ति जब उनके साथ कुछ अधिक समय व्यतीत कर लेता है तभी उनके हास-परिहास और चुटकी लेने के अंदाज से परिचित हो पाता है।

पंडित विद्याधर जी को प्रकृति ने मधुर कण्ठ का वरदान दिया है जिसे उन्होंने अपने परिश्रम और अनवरत अभ्यास से सिद्ध कर लिया है। राग की परम्परागत शुद्धता को बरक़रार रखते हुए पेचीदा स्वरावलियों को सहजता से निबाहते हुए, ताल के आवर्तन में, लय के साथ अठखेलियां करते हुए जब वे अचूकता से सम पर पहुंचते हैं तो श्रोता अनायास वाह वाह करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। सुर और ताल पर उनकी पकड़ सुनने और समझने से संबंध रखती है। एकाधिक बार मुझे पंडित जी के साथ तबला सहयोगी के रूप में प्रस्तुत होने का अवसर भी प्राप्त हुआ और तब उनकी इस ख़ूबी का आनन्द प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त कर सका।

मुंबई विश्वविद्यालय, भातखण्डे संगीत विश्वविद्यालय, एस.आर.ए. (संगीत रिसर्च अकादमी, कोलकाता) में उन्होंने प्रशासकीय पदों पर रहते हुए संगीत को प्रचारित प्रसारित करने में अपना विशिष्ट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

योगदान दिया है। भातखण्डे संगीत विश्वविद्यालय, लखनऊ में कुलपति पद पर रहते हुए उन्होंने इस विश्वविद्यालय का विकास करने के लिए अनेक प्रयत्न किए। निश्चय ही किसी संस्था का विकास करने के लिए एक अच्छी 'टीम' का होना ज़रूरी होता है और वे इसमें सफल हुए। मैं और सुनीता भाले भी उस टीम के सदस्य थे और तब मुझे उनके प्रशासकीय कार्यों को सहजतापूर्वक निबाहने की कुशलता का परिचय मिला। प्रायः कुलपति कक्ष में अथवा प्रबन्ध परिषद की बैठकों में मैंने महसूस किया कि अपनी बात को दृढ़ता के साथ रखते हुए भी अन्य सदस्यों के उचित सुझावों को भी वे अपने निर्णयों में शामिल कर लेते थे।

मैं और सुनीता जी लगभग दो वर्षों तक लखनऊ में कार्यरत रहे। पं. पलुस्कर परम्परा के शिष्य विष्णु अन्नाजी कशालकर जी की पौत्री होने के नाते व्यास साहब सुनीता को पुत्रिवत ही मानते थे। कई बार राग-रूपों या शिक्षण पद्धति के संबंध में सुनीता की जिज्ञासाओं का निराकरण पंड़ित जी अत्यन्त स्नेह और धैर्यपूर्वक कर दिया करते थे। कुछ समय बाद सुनीता जी को छात्रावास अधीक्षिका का कार्यभार भी दिया गया जिस कारण विश्वविद्यालय के परिसर में ही हमारा रहना हुआ, फिर तो चि. मधुरा और चि. आदित्य को भी आज़ोबा (दादा जी) का प्यार मिला।

अधिकांश संगीतज्ञों की भांति पंड़ित व्यास जी भी सुस्वादु भोजन के प्रेमी हैं। पूरणपोड़ी और अनेक मिष्ठान उन्हें अत्यन्त प्रिय हैं। सुनीता पूरणपोड़ी अच्छी बनाती थी और जब भी घर में ऐसा कोई अवसर होता तो पंड़ित जी को आग्रहपूर्वक निमंत्रित किया ही जाता था। अच्छी चीजों की तारीफ करने में व्यास जी कोई कमी नहीं करते इसका प्रमाण तब मिला करता था।

पंडित विद्याधर व्यास जी पर बहुत कुछ लिखा-बोला जा सकता है पर उनके साथ बिताए हुए सांगीतिक समय का आनन्द तो मानो 'गूंगे का गुड़' है जिसे मात्र महसूस कर आनंदित ही हुआ जा सकता है। उसे शब्दों में व्यक्त कर पाना सम्भव नहीं है। उनके लिए उम्र मानो ठहर सी गई है। उन्हें देख कर उनकी उम्र का अंदाज नहीं लगता। यद्यपि वे पचहत्तर वर्ष के हो गए हैं (लगते नहीं हैं न?), पर उनके भीतर का ऊर्जावान और कर्मठ युवा उन्हें सतत् जोशीला बनाए रखता है।

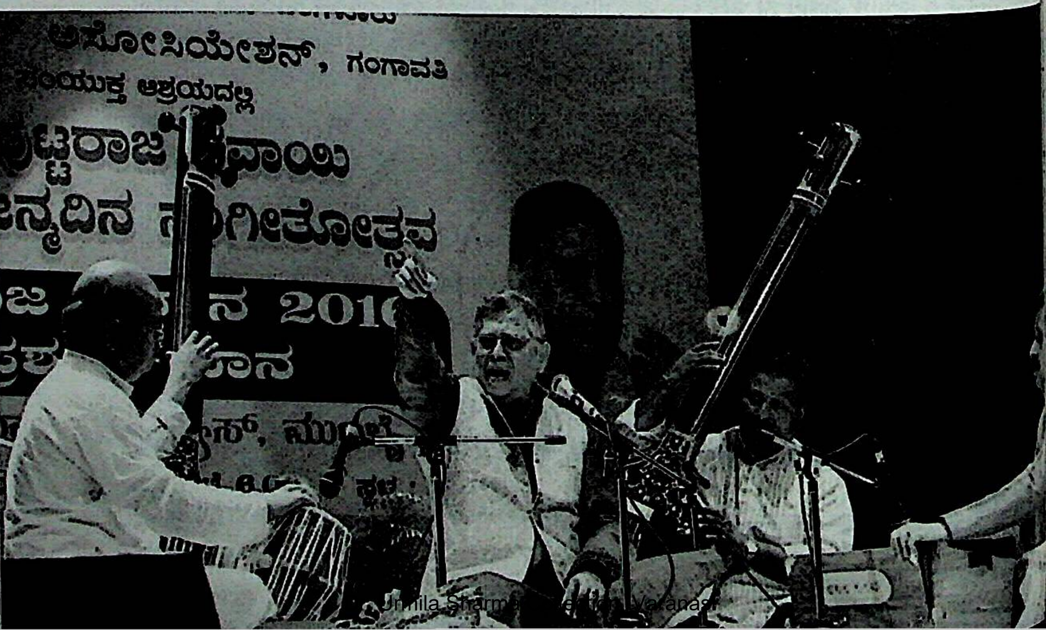

Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अमूल्य और प्रेरणात्मक अनुभव

नितिन वैद्य

अगस्त 2017, त्रिवेणी कला संगम शास्त्रीय संगीत के एक कार्यक्रम में पंडित विद्याधर व्यास जी का गायन सुना। खयाल प्रस्तुति के बाद उन्होने पलुस्कर जी का एक भजन गाया 'कहां के पथिक कहां'। यह भजन अत्यंत मधुर है, पर एक बात खटकी – पंडित जी ने इसे अलग ढंग से गाया था। कार्यक्रम के बाद मैं पंडित जी से मिला। उन्हें मैं जानता तो था पर भेंट पहली बार ही हुई। डरते डरते पूछा कि उन्होंने वह भजन पलुस्कर जी की चाल से हट कर क्यों गाया? उत्तर मिला कि अगर मैंने भी पलुस्कर जी जैसे ही गाया होता तो फिर नवीनता क्या होगी! उतने में कुछ और लोग आ गए और मैं अलग हट गया। वे मुझे बेहद मितभाषी लगे। खैर उनके साथ यह मेरी पहली भेंट थी।

पहली भेंट में मैंने पंडित जी को काफी मितभाषी पाया था पर समय के साथ पाया कि पंडित जी एक मनमुक्त, सौम्य और अत्यंत नम्र व्यक्तित्व हैं। बातचीत में मैं कई बार बेहद बचकाने प्रश्न भी पूछ बैठा, पर उन्होंने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। ऐसे ही गुणिजन सभा में उद्घोषणा के दौरान मैं उनकी संस्था का नाम पढ़ना ही भूल गया। उन्होंने मुझे स्टेज से मुड़ कर देखा पर मैं समझ नहीं पाया। एक बार मेरा ड्राईवर उन्हें अपने मार्ग ज्ञान का प्रदर्शन कराता हुआ इंडिया इंटरनेशनल सेंटर के आसपास घुमाता रहा पर पहुंचा नहीं पाया। ज़ाहिर है मेरे लिए यह शर्मिंदगी का कारण था। मैंने पंडितजी से माफी भी मांगी और उन्होंने मुझे माफ भी कर दिया।

सभाओं में हम संगीत को एक 'फाइनल प्रॉडक्ट' के रूप में देखते हैं, निर्णय करते है अच्छा या बुरा! यह ठीक नहीं है। संगीत के प्रकार हैं। ध्रूपद है, खयाल है, ठुमरी, दादरा, टप्पा, कजरी, चौती, भजन और तराना इत्यादि हैं। गायकी के घराने हैं। इन सब को सुनने का तरीका अलग है और समझने का भी। और यह सब तब तक समझ नहीं आ सकता जब तक आप एक अच्छे संगीतकार के साथ न रहें और संगीत की आत्मा को न समझें।

कुछ समय बाद तय हुआ कि वे हमारी गुणिजन सभा में आएंगे। पंडित जी से आयोजन संबंधी कुछ बातचीत हुई पर संगीत के बारे में नहीं। गुणिजन सभा संगीत का एक मासिक कार्यक्रम है पर अन्य कार्यक्रमों से कुछ अलग हट कर! इसमे गायन वादन के साथ संगीत पर चर्चा भी होती है। उस कार्यक्रम में पंडित जी ने जो ज्ञान सरिता बहाई वो अद्भुत थी। पहली बार ग्वालियर गायकी के बारे में पता चला। खुला आकार, त्रिवट, चतुरंग, अष्टांग गायकी, कडक बिजली तान इत्यादि। ये सब मैंने तो क्या किसी ने भी नहीं सुने थे। श्रोता भी दस बजे तक नहीं हिले। ऐसा कम ही होता है दिल्ली में। गुणिजन सभा के बाद पंडित जी से मेरा संपर्क बढ़ा। मैं उनके घर गया। कई बार उनसे लंबी बातचीत हुई। कई बार मैं उनके साथ संगीत की सभाओं में गया। इन मुलाकातों और सभा यात्राओं से एक फायदा हुआ। संगीत के बारे में मेरी समझ बढ़ी। दूसरा यह कि इस प्रक्रिया से अनेक महान कलाकारों से मेरी भेंट हुई। इस कारण अब मैं कार्यक्रम से पहले, ग्रीन रूम में बैठ कर कलाकारों को सुन पाता हूं। मेरी दृष्टि में स्टेज पर आप संगीत का श्रृंगार देखते हैं पर ग्रीन रूम में संगीत और संगीतकार की आत्मा को महसूस करते हैं।

एक फायदा और हुआ। बचपन से मैं शास्त्रीय संगीत सुनता आ रहा हूं। सीखा कभी नहीं। नाट्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत सुनता और गाता था पर केवल बाथरूम में। सार्वजानिक रूप से गाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। बड़ी इच्छा थी कि कभी किसी कलाकार के सम्मुख गा कर दिखाऊं, पर हिम्मत नहीं हुई। फिर एक बार मौका हाथ लगा! एक बार एक कार्यक्रम से लौटते हुए कार में पंडित जी मेरे बगल में बैठे हुए थे। बीस मिनट की उहापोह के बाद कुछ बहाना कर के मैंने एक नाट्य संगीत का मुखड़ा सुना ही दिया। पंडित जी ने महानता का परिचय देते हुए कहा 'आप अच्छा गाते हो!' अब मैं क्या कहूं! ये मुंह और मसूर की दाल!! पर मेरा जीवन सफल हो गया। दो विषयों पर मेरी उनसे लंबी बातचीत हुई। एक पुरानी 'चीजों' को अपनी तरह से पेश करना और दो- भारतीय शास्त्रीय संगीत के विकास और विस्तार में महाराष्ट्र का महत्व।

एक बार मैं दिल्ली में पंडित जी के घर पर बैठा था तो मैंने बात शुरू हुई कि पुरानी बन्दिशें, भजन इत्यादि वैसे ही क्यों न गाए जाएं जैसा मूर्धन्य गायक पहले प्रस्तुत कर चुके हैं। इस पर उनके विचार स्पष्ट थे। युवावस्था में वे जब गाते थे तो अपने पिताजी जैसा ही गाते थे। पं. रविशंकर जैसे कलाकार भी कह चुके थे कि उनके गायन में उनके पिताजी की याद ताजा हो जाती है। इस बात पर पंडित जी को गर्व होता था। परंतु उनके पिताजी ने उन्हें समझाया कि 'तुम अपने कंधे पर मुझे बैठा कर ले जाते हो, स्टेज पर मुझे अपने आगे बैठाते हो और फिर गाते हो। इससे लोगों को मैं दिखता हूं तुम नहीं! यह ठीक नहीं है। इसलिए अपनी स्वयं की गायन पद्धति बनाओ। पर इसका अर्थ घराने की गायकी से दूरी बनाना बिलकुल नहीं है।'

इसके बाद पंडित जी जयपुर आ गए। यहां उनका संपर्क उत्तर भारत के घरानों के संगीतकारों से हुआ। जयपुर, बनारस और दिल्ली में अपनी प्रस्तुतियां दी। लगभग दस वर्ष की इस अवधि में पंडित जी ने अपनी एक अलग गायकी का निर्माण किया। तत्पश्चात वे जब मुंबई गए और पिताजी से मिले तो पिताजी ने उन्हें कहा, 'अब तुम स्वयं विद्याधर व्यास हो। अब तुम मेरे प्लेट्फार्म पर बैठ कर स्वयं को प्रस्तुत कर पा रहे हो।' घराना और गुरु आपकी नींव हैं इनके बिना आप खड़े नहीं रह सकते। ये ही वे प्लेटफार्म हैं जिन पर चढ़ कर आप स्वयं को प्रस्तुत कर सकते हैं। इनके बिना तो केवल भटकन है।

ऐसे ही सितंबर 2018 में बातचीत भारत के संगीत घरानों की ओर चल पड़ी। पता चला कि वे भारत के शास्त्रीय संगीत के विकास में महाराष्ट्र के योगदान पर एक शोध पत्र लिख चुके हैं। मुद्दा इस प्रकार है कि मुगल और अन्य सल्तनतें समाप्त होने पर संगीतज्ञ अन्य रजवाड़ों की ओर चले। इनमे प्रमुख थे ग्वालियर, इंदौर, जयपुर, बड़ोदा, मिरज, सांगली और कोल्हापुर। जयपुर को छोड़ कर शेष सब महाराष्ट्रियन रजवाड़े थे जिन्होने उन संगीतज्ञों को सहारा दिया। ऐसे ही आ कर बसे संगीतज्ञों से बना मुंबई में महाराष्ट्र का अपना भेंड़ी बाज़ार घराना। महाराष्ट्र को संगीतकार मिले तो इन संगीतकारों को यहाँ उत्तम शिष्य भी मिले जिन्होने संगीत घरानों का नाम रोशन किया। कोल्हापुर में अल्लादिया खान साहब तो मिरज में अब्दुल करीम खान साहब की मूर्तियां हैं। ये छोटी बातें नहीं हैं। ऐसा प्रेम पूर्ण सहारा दिया महाराष्ट्र ने संगीतकारों को जिसके कारण आज भारतीय शास्त्रीय संगीत जीवंत हैं। मैंने संगीत सीखा नहीं है, पर बचपन से सुनता आ रहा हूं। सुरों का अंदाज़ है, पर रागों का ज्ञान नहीं है। शायद एक अच्छा श्रोता अवश्य हूं। संगीत प्रेमी हूं, बस इतना ही! मैं पंडितजी के साथ अनेक चर्चाओं मैं भागीदार रहा। होता यह था कि दिल्ली में वे जब संगीत सभाओं में जा रहे होते थे, तो मैं उनके साथ हो लेता था। सभा तक जाने और वापसी के समय का उपयोग उनसे ज्ञान प्राप्त करने में होता था। ज्ञान के हर बिन्दु से कोई किस्सा तो जन्म नहीं लेता पर वह बिन्दु मन में बस कर मन का विकास करता है। बीज की तरह अंकुरित होता है। सारे बीज एक साथ अंकुरित नहीं होते। मेरे मन में भी ऐसे ढेर सारे बीज हैं जो अभी अंकुरित नहीं हुए हैं, शायद अगले जन्म की प्रतीक्षा है। तब तक पंडित जी से ऐसे ही ज्ञान बिन्दु प्राप्त करता रहूंगा। यात्रा जारी है!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कार्यशालाओं के बहाने

सुनीरा कासलीवाल व्यास

पिछले लगभग पांच-छह वर्षों से दिल्ली में हमारे निवास स्थान पर विद्यार्थियों के लाभार्थ कई संगीत कार्यशालाओं का आयोजन किया गया। गायनाचार्य पं. नारायणराव व्यास संगीत प्रतिष्ठान, मुम्बई के तत्वावधान में आयोजित ये सभी कार्यशालाएं पं. विद्याधर व्यास द्वारा ली गईं जिसमें गायन एवं वादन दोनों ही विधाओं के विद्यार्थियों ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। समय-समय पर आयोजित इन कार्यशालाओं में पंडित जी ने भिन्न-भिन्न विषय लेकर चर्चा की। गायन में स्वर साधना कैसे की जाए, अपने सही पिच का निर्धारण कैसे हो, इस विषय से लेकर राग क्या है एवं रागांग क्या है तक के गंभीर विषयों पर चर्चा होती रही है। कई कार्यशालाएं एक ही रागांग एवं उस रागांग के अलग-अलग रागों पर केंद्रित करके की गई जिनमें भैरव अंग व भैरव अंग के रागांग राग, कल्याण अंग एवं कल्याण अंग के राग, ग्वालियर घराने के पंच कड़ी राग जिसके अंतर्गत छायानट, गौड़ सारंग, कामोद, हमीर एवं शंकरा राग आते हैं इन रागों का दो दिन तक अभ्यास किया गया। इन कार्यशालाओं की सफलता के चलते इसी दौरान पंडित जी की कई कार्य शालाएं दिल्ली व देश के विविध स्थानों पर भी आयोजित की गई जिसमें से कुछ निम्नानुसार हैं-

चार दिवसीय कार्यशाला - इन्डिया हैबिटैट सेन्टर, दिल्ली (19-22 जुलाई 2014)

तीन दिवसीय कार्यशाला - गांधर्व महाविद्यालय, दिल्ली

तीन दिवसीय कार्यशाला - कानपुर

दो दिवसीय कार्यशाला - संगीत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय - इलाहाबाद, 7-8 फरवरी 2015

दो दिवसीय कार्यशाला - संगीत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

दयाल बाग विश्वविद्यालय - आगरा

चार दिवसीय कार्यशाला - ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, संगीत एवं नाट्य विभाग, दरभंगा, बिहार (21-24 जून 2013)

तीन दिवसीय कार्यशाला - सप्तक संस्था, अहमदाबाद, नवम्बर (2018)

तीन दिवसीय कार्यशाला - त्रिपुरा विश्वविद्यालय, संगीत विभाग, दिल्ली संगीत नाटक अकादमी के तत्वावधान में आयोजित (चार, पांच एवं छह मार्च 2018)

स्पिक मैके कार्यशाला, पटना (एक-दो मार्च 2019)

इन कार्यशालाओं में से कुछ कार्यशालाओं में इस लेख की लेखिका उपस्थित थी। उन्ही कार्यशालाओं के लेखिका द्वारा लिए गए कुछ 'नोट्स' यहां पर प्रस्तुत किये जा रहे हैं। ये कार्यशालाएं पंडित जी के अथाह ज्ञान से ओत-प्रोत हैं एवं ग्वालियर घराने के गायन के प्रशिक्षण के साथ-साथ ग्वालियर की सम्पूर्ण गायकी का दिग्दर्शन कराती है।

विद्यार्थियों एवं सभी संगीत प्रेमियों के लिए ये लेख रूचिपूर्ण रहेगा एवं इससे उन्हें कुछ न कुछ सीखने का अवसर मिले तो लेखिका का यह श्रम सफल रहेगा, ऐसी आशा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कार्यशाला 13 मार्च 2013, मौरिस नगर, दिल्ली

कार्यशाला के पहले दिन पंडित जी ने सभी विद्यार्थियों का अभिनन्दन स्वीकार किया एवं अपनी वार्त्ता प्रारम्भ की-

जब भी कोई कार्य प्रारम्भ करते हैं तो हमें स्वयं से तीन प्रश्न करने चाहिए-पहला ये क्या है 'व्हॉट'? इससे हमें उस कार्य से संबंधित जानकारी यानि 'इनफॉरमेशन' मिलती है। दूसरा प्रश्न है 'हाउ' यानि ये कैसे किया जाता है-इससे उस कार्य की 'स्किल' की जानकारी प्राप्त होती है कि ये कार्य विशेष कैसे किया जाता है। और तीसरा प्रश्न है 'व्हाई' यानि ये कार्य हमें क्यों करना है? या ये क्यों किया जाता है? यह तीसरा प्रश्न दार्शनिक है और यह उस कार्य के पीछे का 'परपज़', क्या उद्देश्य है, इसकी ओर इंगित करता है।

आप जब संगीत सीखते हैं तो उसका उद्देश्य क्या है? उद्देश्य कई हो सकते हैं किन्तु सबसे बड़ा और सार्वभौमिक उद्देश्य है आनन्द। और वह भी कोई साधारण आनन्द नहीं बल्कि आत्मा का आनन्द आत्मिक आनन्द। आत्मिक आनन्द जो ब्रह्मानन्द जैसा है। यानि ब्रह्म को प्राप्त कर लेने वाला आनन्द। इस प्रकार जब प्रश्न मन में उठते हैं तो सोचना प्रारम्भ होता है। सबसे बड़ी बात है कि सोच प्रारम्भ करना है।

सोच जागृत होती है तो कुछ न कुछ जीवन में मिल ही जाता है। पहले के जमाने में विद्यार्थी को प्रश्न पूछने की इज़ाजत नहीं थी लेकिन आज समय अलग है। आज विद्यार्थी को 'एक्सपोजर' भी बहुत है 'मीडिया' भी बहुत 'एक्टिव' है। इस समय संगीत की गुरूकुल व्यवस्था समाप्त हो गई है। संगीत प्रारम्भ से ही किंवदंतियों एवं रहस्यमयी बातों से जुड़ा रहा है। लेकिन अब किस्से कहानियों से निकलकर वास्तविक स्थिति से हमें अवगत होना चाहिए।

हमने 12 स्वर एवं 22 श्रुतियां की बात हमेशा से की है। यह सब व्याकरण हैं, किन्तु स्वरों के लगाव अनगिनत हैं। प्रत्येक व्यक्ति द्वारा लगाए गए स्वर लगाव एकदम 'यूनिक' होते हैं। हर मनुष्य का जिस तरह चेहरा अलग है उसी तरह उसकी आवाज भी एकदम अलग होती है। आवाजों की भी अनगिनत शेड्स होती हैं। आवाज, ध्वनि, स्वर, स्वरों के लगाव इसके शेड्स अनन्त हैं।

भाव प्रदर्शन का माध्यम है-आवाज। विभिन्न भावों को अभिव्यक्त करने के लिए आवाज़ में 'मौड्यूलेशंस' किए जाते हैं जिन्हें हमारे शास्त्रों में काकु कहा है। आवाज लगाने के तरीके से पता लगता है कि कोई किस 'मूड' में है। 'टोनल एक्सप्रैशन इज ऑल्सो इम्पोर्टेन्ट'। आवाज़ आपके 'एक्सप्रेशन' का 'वेहिकिल' है। 'एक्सप्रेशन' एण्ड 'कम्युनिकेशन'।

विद्यार्थी को सर्वप्रथम अपनी आवाज को पहचानना है। अपनी आवाज कैसी है-उसे पहचानो। उसे 'डेवलप' करो। अनुकरण करना एक हद तक ठीक है किन्तु उसके आगे हमें स्वयं को पहचानना चाहिए। अपनी आवाज़ 'डेवलप' करने के क्या-क्या 'एक्सरसाइज' हैं? उन्हें सीखना चाहिए और उनका निरन्तर अभ्यास करना है। स्वर लगाव और उनके दर्जे व 'शेड्स' अलग है। अभिव्यक्ति-'एक्सप्रेशन' अलग-अलग होने से स्वर का दर्जा बदल जाता है।

संगीत-यानि अच्छा गीत 'स' संज्ञा अच्छे के लिए है। भारतीय संगीत मुख्यतः या प्रमुखतः गायन यानि वाद्य संगीत में जो सर्वश्रेष्ठ वादक है उसके लिए कहा जाता है कि उनका वाद्य तो गाता है। तो इस तरह भी गायन की प्रमुखता सिद्ध होती है। संगीत के द्वारा आत्मिक आनन्द एवं ब्रह्मानंद की स्थिति में पहुंचने के लिए 'टूल्स' है-राग एवं राग की बंदिशें। अलग-अलग राग को दर्शाने के लिए भिन्न-भिन्न बंदिशें ऐसी हैं जैसे हमारे भिन्न-भिन्न वस्त्र। रागों में स्वरों के अलग-अलग दर्जे एवं अलग-अलग सु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगाव से राग के विविध रूप के दर्शन होते हैं।

प्रस्तुति के दौरान कलाकार एवं श्रोता में आदान-प्रदान होता है और दोनों को ही आनन्द मिलता है। कलाकार को श्रोता द्वारा 'इन्सपीरेशन' मिलता है। और कलाकार और भी कुछ अच्छा करने के लिए प्रयत्नशील होता है। 'इन्सपायर्ड' होता है। हमारे शरीर से जो स्वर निकलता है, उसका करीब का संबंध श्वांस से हैं। जब हम श्वांस छोड़ते है तभी आवाज लगती है। यानि संगीत का सारा कारोबार जब हम श्वांस छोड़ते हैं-उसी से है।

स्वराभ्यास का अभ्यास क्रम पूरी श्वांस ले लो और धीरे से श्वांस छोड़ दो-ये क्रिया धीमी होनी चाहिए 'वैरी-वैरी स्लो'। जब आप स्वराभ्यास करने बैठे तो सबसे पहले चार-पांच मिनट लम्बी श्वांस लें व धीरे-धीरे छोड़े-आपका 'पोश्चर' यानि मुद्रा एकदम सही हो। स्वराभ्यास के, स्वर साधना के चार नियम हैं-जो इस प्रकार हैं-

आसन - 'सिट प्रोपर्ली' - यानि सही ढंग से सही आसन में बैठना।

'रिलेक्स' - यानि पूरी तरह तनाव रहित होना।

एकाग्रता/स्थिर चित्त - यानि पूरी तरह ध्यान लगाकर, एकाग्रता पूर्वक बैठना।

और चौथा है - ओपन यॉर वाइस - पूरा लम्बा गहरा श्वांस लेकर अपनी आवाज लगाना।

पहले वाद्य के विद्यार्थियों की तालीम भी गायन से होती थी। अतः ये चार नियम उनके भी काम के है। वाद्य के अभ्यास के पूर्व ये चार नियम उनपर भी लागू होते हैं।

आसन - हमारे संगीत में ज़मीन पर बैठ कर गाने-बजाने का विकास हुआ है। कीर्तन की परम्परा खड़े होकर है। नारदीय परम्परा में गायन-वादन-नृत्य की परम्परा है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में बैठक का महत्व बहुत ज्यादा है। शरीर में तनाव नहीं होना एवं शरीर सुखासन में होना चाहिए।

आवाज लगाना - हमारे सारे संगीत का उच्चारण मूल आ-कार है। ईकार, ओकार, उकार नहीं है। हमारे शरीर में स्वरोत्पादन के तीन भाग है। मन्द्र सप्तक का स्थान है-स्टोमक और पेट में भी जो सेन्टर है, नाभि वह शक्ति का केन्द्र है। मन्द्र सप्तक के स्वरों की एनर्जी यहीं से 'ड्रॉ' करते हैं। मध्यम सप्तक की एनर्जी आपको लंग्स यानि फेफड़ों से मिलती हैं। तथा तार सप्तक का स्वर प्रदेश है तालू प्रदेश-नेजल कैवेटिज व साईनस। स्वर में जो तासीर होती है वह स्वर साधना से आती है। 'वाईस बाक्स' में 'वॉकल कौर्ड्स' हैं-वह 'बाइब्रेट' होते हैं और इस प्रकार स्वर पैदा होता है।

इस तरह ये तीन सप्तक हमारे शरीर के भीतर हैं। इन्हें स्वराभ्यास से 'एक्टीवेट' करते हैं-और 'एनर्जाइज' करते है। व्यक्तिगत क्षमता की बात है, इसमें 'शार्टकट' नहीं है। जल्दबाजी नहीं करनी है 'इट्स ऑल डिपेन्ड ऑन वन्स ओन इन्डीविज्यूल केपेसीटी।'

अभ्यास से स्वर धीरे-धीरे 'कन्ट्रोल' में आता है। अब हम स्वराभ्यास का तरीका समझाएंगे-सर्वप्रथम एक सांस में एक स्वर। टेक ए डीप ब्रीथ-होल्ड द ब्रीथ और फिर का उच्चारण करो-

एक सांस में एक स्वर-

पहले 'सा' लगाएं-

फिर नीचे वाला ऩि

फिर नीचे वाला ध़

यदि आप नीचे ध़ तक ही जाएं इससे नीचे न जा सके। कोई बात नहीं। नाभि प्रदेश में यह सबसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कार्यशाला के पहले दिन पंडित जी ने सभी विद्यार्थियों का अभिनन्दन स्वीकार किया एवं अपनी वार्त्ता प्रारम्भ की-

जब भी कोई कार्य प्रारम्भ करते हैं तो हमें स्वयं से तीन प्रश्न करने चाहिए-पहला ये क्या है: 'व्हॉट'? इससे हमें उस कार्य से संबंधित जानकारी यानि 'इनफॉरमेशन' मिलती है। दूसरा प्रश्न है 'हाउ' यानि ये कैसे किया जाता है-इससे उस कार्य की 'स्किल' की जानकारी प्राप्त होती है कि ये कार्य विशेष कैसे किया जाता है। और तीसरा प्रश्न है 'व्हाई' यानि ये कार्य हमें क्यों करना है? या ये क्यों किया जाता है? यह तीसरा प्रश्न दार्शनिक है और यह उस कार्य के पीछे का 'परपज़', क्या उद्देश्य है, इसकी ओर इंगित करता है।

आप जब संगीत सीखते हैं तो उसका उद्देश्य क्या है? उद्देश्य कई हो सकते हैं किन्तु सबसे बड़ा और सार्वभौमिक उद्देश्य है आनन्द। और वह भी कोई साधारण आनन्द नहीं बल्कि आत्मा का आनन्द, आत्मिक आनन्द। आत्मिक आनन्द जो ब्रह्मानन्द जैसा है। यानि ब्रह्म को प्राप्त कर लेने वाला आनन्द। है इस प्रकार जब प्रश्न मन में उठते हैं तो सोचना प्रारम्भ होता है। सबसे बड़ी बात है कि सोच प्रारम्भ करना है।

सोच जागृत होती है तो कुछ न कुछ जीवन में मिल ही जाता है। पहले के जमाने में विद्यार्थी को प्रश्न पूछने की इज़ाजत नहीं थी लेकिन आज समय अलग है। आज विद्यार्थी को 'एक्सपोजर' भी बहुत है 'मीडिया' भी बहुत 'एक्टिव' है। इस समय संगीत की गुरूकुल व्यवस्था समाप्त हो गई है। संगीत प्रारम्भ से ही किंवदंतियों एवं रहस्यमयी बातों से जुड़ा रहा है। लेकिन अब किस्से कहानियों से निकलकर वास्तविक स्थिति से हमें अवगत होना चाहिए।

हमने 12 स्वर एवं 22 श्रुतियां की बात हमेशा से की है। यह सब व्याकरण हैं, किन्तु स्वरों के लगाव अनगिनत हैं। प्रत्येक व्यक्ति द्वारा लगाए गए स्वर लगाव एकदम 'यूनिक' होते हैं। हर मनुष्य का जिस तरह चेहरा अलग है उसी तरह उसकी आवाज भी एकदम अलग होती है। आवाजों की भी अनगिनत शेड्स होती हैं। आवाज, ध्वनि, स्वर, स्वरों के लगाव इसके शेड्स अनन्त हैं।

भाव प्रदर्शन का माध्यम है-आवाज। विभिन्न भावों को अभिव्यक्त करने के लिए आवाज़ में 'मौड्यूलेशंस' किए जाते हैं जिन्हें हमारे शास्त्रों में काकु कहा है। आवाज लगाने के तरीके से पता लगता है कि कोई किस 'मूड' में है। 'टोनल एक्सप्रैशन इज ऑल्सो इम्पोर्टेन्ट'। आवाज़ आपके 'एक्सप्रेशन' का 'वेहिकिल' है। 'एक्सप्रेशन' एण्ड 'कम्युनिकेशन'।

विद्यार्थी को सर्वप्रथम अपनी आवाज को पहचानना है। अपनी आवाज कैसी है-उसे पहचानो। उसे 'डेवलप' करो। अनुकरण करना एक हद तक ठीक है किन्तु उसके आगे हमें स्वयं को पहचानना चाहिए अपनी आवाज़ 'डेवलप' करने के क्या-क्या 'एक्सरसाइज' हैं? उन्हें सीखना चाहिए और उनका निरन्तर अभ्यास करना है। स्वर लगाव और उनके दर्जे व 'शेड्स' अलग है। अभिव्यक्ति-'एक्सप्रेशन' अलग-अलग होने से स्वर का दर्जा बदल जाता है।

संगीत-यानि अच्छा गीत 'स' संज्ञा अच्छे के लिए है। भारतीय संगीत मुख्यतः या प्रमुखतः गायन यानि वाद्य संगीत में जो सर्वश्रेष्ठ वादक है उसके लिए कहा जाता है कि उनका वाद्य तो गाता है। तो इस तरह भी गायन की प्रमुखता सिद्ध होती है। संगीत के द्वारा आत्मिक आनन्द एवं ब्रह्मानंद की स्थिति में पहुंचने के लिए 'टूल्स' है-राग एवं राग की बंदिशें। अलग-अलग राग को दर्शाने के लिए भिन्न-भिन्न बंदिशें ऐसी हैं जैसे हमारे भिन्न-भिन्न वस्त्र। रागों में स्वरों के अलग-अलग दर्जे एवं अलग-अलग सु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगाव से राग के विविध रूप के दर्शन होते हैं।

प्रस्तुति के दौरान कलाकार एवं श्रोता में आदान-प्रदान होता है और दोनों को ही आनन्द मिलता है। कलाकार को श्रोता द्वारा 'इन्सपीरेशन' मिलता है। और कलाकार और भी कुछ अच्छा करने के लिए प्रयत्नशील होता है। 'इन्सपायर्ड' होता है। हमारे शरीर से जो स्वर निकलता है, उसका करीब का संबंध श्वांस से हैं। जब हम श्वांस छोड़ते है तभी आवाज लगती है। यानि संगीत का सारा कारोबार जब हम श्वांस छोड़ते हैं-उसी से है।

स्वराभ्यास का अभ्यास क्रम पूरी श्वांस ले लो और धीरे से श्वांस छोड़ दो-ये क्रिया धीमी होनी चाहिए 'वैरी-वैरी स्लो'। जब आप स्वराभ्यास करने बैठे तो सबसे पहले चार-पांच मिनट लम्बी श्वांस लें व धीरे-धीरे छोड़े-आपका 'पोश्चर' यानि मुद्रा एकदम सही हो। स्वराभ्यास के, स्वर साधना के चार नियम हैं-जो इस प्रकार हैं-

आसन - 'सिट प्रोपर्ली' - यानि सही ढंग से सही आसन में बैठना।

'रिलेक्स' - यानि पूरी तरह तनाव रहित होना।

एकाग्रता/स्थिर चित्त - यानि पूरी तरह ध्यान लगाकर, एकाग्रता पूर्वक बैठना।

और चौथा है - ओपन यॉर वाइस - पूरा लम्बा गहरा श्वांस लेकर अपनी आवाज लगाना।

पहले वाद्य के विद्यार्थियों की तालीम भी गायन से होती थी। अतः ये चार नियम उनके भी काम के है। वाद्य के अभ्यास के पूर्व ये चार नियम उनपर भी लागू होते हैं।

आसन - हमारे संगीत में ज़मीन पर बैठ कर गाने-बजाने का विकास हुआ है। कीर्तन की परम्परा खड़े होकर है। नारदीय परम्परा में गायन-वादन-नृत्य की परम्परा है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में बैठक का महत्व बहुत ज्यादा है। शरीर में तनाव नहीं होना एवं शरीर सुखासन में होना चाहिए।

आवाज लगाना - हमारे सारे संगीत का उच्चारण मूल आ-कार है। ईकार, ओकार, उकार नहीं है। हमारे शरीर में स्वरोत्पादन के तीन भाग है। मन्द्र सप्तक का स्थान है-स्टोमक और पेट में भी जो सेन्टर है, नाभि वह शक्ति का केन्द्र है। मन्द्र सप्तक के स्वरों की एनर्जी यहीं से 'ड्रॉ' करते हैं। मध्यम सप्तक की एनर्जी आपको लंग्स यानि फेफड़ों से मिलती हैं। तथा तार सप्तक का स्वर प्रदेश है तालू प्रदेश-नेजल कैवेटिज व साईनस। स्वर में जो तासीर होती है वह स्वर साधना से आती है। 'वाईस बाक्स' में 'वॉकल कौर्ड्स' हैं-वह 'बाइब्रेट' होते हैं और इस प्रकार स्वर पैदा होता है।

इस तरह ये तीन सप्तक हमारे शरीर के भीतर हैं। इन्हें स्वराभ्यास से 'एक्टीवेट' करते हैं-और 'एनर्जाइज' करते है। व्यक्तिगत क्षमता की बात है, इसमें 'शार्टकट' नहीं है। जल्दबाजी नहीं करनी है 'इट्स ऑल डिपेन्ड ऑन वन्स ओन इन्डीविज्यूल केपेसीटी।'

अभ्यास से स्वर धीरे-धीरे 'कन्ट्रोल' में आता है। अब हम स्वराभ्यास का तरीका समझाएंगे- सर्वप्रथम एक सांस में एक स्वर। टेक ए डीप ब्रीथ-होल्ड द ब्रीथ और फिर का उच्चारण करो-

एक सांस में एक स्वर-

पहले 'सा' लगाएं-

फिर नीचे वाला ऩि

फिर नीचे वाला ध़

यदि आप नीचे ध़ तक ही जाएं इससे नीचे न जा सके। कोई बात नहीं। नाभि प्रदेश में यह सबसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अधिक एनर्जी होती है-इसलिए सबसे पहले इसे साधना चाहिए। मन्द्र साधना का समय प्रातः काल हो
है। खाली पेट में इसका अभ्यास किया जाना चाहिए। हमारे संगीत में मंद्र साधना का बड़ा महत्व है।
अभ्यास एक दिन में स्त्रियों के लिए 10 से 15 मिनट एवं पुरूषों के लिए आधा घण्टा बस। इसके बाद
मिनिट गले को आराम देना है चाहिए।

अलग-अलग कार्य के लिए हमारे वोकल कौड्स की क्षमता का अलग-अलग इस्तेमाल क
हैं-स्पीकिंग (यानि केवल बातचीत में) हम- 20% से 25% तक स्वर यंत्र का इस्तेमाल करते हैं। भा
(यानि मंच पर बोलते समय) हम - 40% से 50% तक स्वर यंत्र का इस्तेमाल करते हैं। नाटक (ना
में संवाद बोलते समय) हम-70 से 75% तक स्वर यंत्र का इस्तेमाल करते हैं। गायन करते स
हम-100% तक स्वर यंत्र का इस्तेमाल करते हैं। ये प्रतिशत होते है हमारे स्वर यंत्र यानि वोकल कौ
के इस्तेमाल का। इसलिए गायन के लिए स्वर साधना या स्वर यंत्र साधना अत्यंत आवश्यक है। इ
हमारा स्वर यंत्र यानि वायस बॉक्स पूरी तरह हमारे नियंत्रण में आ जाएगा। और हम इसका पूरा-
लाभ उठा पाएंगे।

अब इस अभ्यास का क्रम क्या रहेगा ये बताते हैं - क्रम-पहले हफ्ते एक सांस में एक स्वर। दू
हफ्ते फिर एक सांस में दो स्वर-यू हेव टू एक्सप्लोर द फुल केपेसिटी ऑफ यॉर वोकल कौड्स।

फिर अगले यानि तीसरे हफ्ते एक सांस में तीन स्वर फिर चौथे हफ्ते एक श्वांस में चार स्वर
पांचवे हफ्ते में एक श्वांस में पांच स्वर। फिर छठे हफ्ते में एक श्वांस में छह स्वर लें। और फिर इ
आगे एक सांस में आरोह एवं अवरोह दोनों करें। जब इस तरह अभ्यास करके स्वर कंट्रोल में आ जा
लय बढ़ा दीजिये और फिर अलंकार करें।

इस अभ्यास क्रम के दौरान ठण्डा पानी नहीं पीना है, बर्फ नहीं खाना है, आईसक्रीम नहीं
है। इस अभ्यास के लगभग एक घण्टा बाद अपने नॉर्मल अभ्यास में बैठ जाएं-तानपूरे के साथ
मिलाना चाहिए। इस स्वराभ्यास के लाभ हैं-स्थिर स्वर, लम्बा दम श्वांस, सुरीलापन एवं स्वर की ता
सांस की गति रेगूलर रहनी चाहिए लगातार व धीमी गति।

गाना एक स्वाभाविक क्रिया है। रीढ़ की हड्डी सीधी होनी चाहिए एवं शरीर में तनाव नही
चाहिए। पूरी तरह 'रीलेक्स' यानि शरीर व मन दोनों तनाव रहित होने चाहिए।

मन्द्र, मध्य व तार ये तीन स्थान हैं उर्जा के गायन क्रिया के समय इनमें किसी भी प्रकार की कि
नहीं आनी चाहिए। ग्वालियर घराने में शुद्ध मुद्रा-शुद्ध वानी का बहुत महत्व बताया है।

कोन्संट्रेशन एवं स्वराभ्यास करेंगे - एक चित्त हो जाइए सही स्वर, स्थिर स्वर, सुरीलापन।
गाने को स्वयं सुनना चाहिए एवं उसका आनन्द लेना चाहिए। आवाज़ खोलकर गाना चाहिए।
आवाज़ पर विश्वास, अपनी आवाज पर अभिमान करना चाहिए।

आप की अपनी आवाज क्या है? आवाज खोलकर गाईए। सभी के पास कुछ अच्छी चीजें है,
कुछ बुरी चीजे हैं। कमजोरियों को छिपाईए और अच्छी चीजों को सामने लाईए। ये प्रस्तुति के समय
अभ्यास में इसका उल्टा है। अपनी कमजोरियों को पहचानिये एवं उनपर अभ्यास करें, उनको दूर क

'पिच' निर्धारण - आवाज को गायन के अनुकूल कैसे बनाते हैं? मूल मुद्दा ये है कि
'पिच' क्या है? हरेक को पहले अपना 'पिच' ढूंढ़ना चाहिए। पहले-पहले सहज रूप से 'सा' गाईये।
नीचे मंद्र सप्तक में जाईए। फिर वापिस मध्य सप्तक के 'स' पर आकर तार सप्तक के 'स' पर ज
तार सप्तक के स्वर लगाईये-सहजता से जितना ऊंचा जा सकते हैं जाइए। कई बार तार सप्तक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आवाज अच्छी जाती है लेकिन मंद्र में नहीं जाती। कोई बात नहीं-एक ही स्वर यानि पिच पर गाने से आवाज़ में तासीर आ जाएगी। आवाज का संचालन मन्द्र, मध्य व तार में सहजता से हो जाए तो वही आपका अपना स्वर है। आपका 'पिच' है।

संगीत में प्राणायाम का बड़ा महत्व है-गहरी श्वास लीजीए और धीमी श्वास छोड़िये। 5 मिनिट सिर्फ इसी का अभ्यास कीजिए। सांस लेने की गति तेज होती है-सांस छोड़ने की गति धीमी होती है। सांस लेने की गति को अधिक कन्ट्रोल नहीं कर सकते हैं छोड़ने की गति को कर सकते हैं-सांस लेकर वहां थोड़ा रूकिये सांस छोड़िए और थोड़ा रूकिए। एक हफ्ते तक घड़ी देखकर अपनी सांस देखिए। अगर 'स' 15 सेकण्ड तक है तो धीरे-धीरे 20 सेकण्ड तक 'सा' लगाईये। अभ्यास से इससे भी अधिक हो जाएगा। आवाज़ में दम, गहराई आएगी और दम सांस अच्छी हो जाएगी।

सवेरे के समय मन्द्र सप्तक की साधना सर्वोत्तम होती है। मध्य सप्तक में गायन, टोन व मोड्यूलेशन ये सभी चीजें उच्छवास पर आधारित हैं। टोनल क्वालिटि मुंह एवं नासिका विवर से तथा मुंह की 'शेप' से बनती है। आकार, ईकार, एकार, ओकार ये 'माड्यूलेशन' हैं इन्हें हमारे शास्त्रों में स्वर काकु एवं शब्द काकु कहा गया है।

पुनः बताते हैं कि अपना 'पिच' कैसे सिलेक्ट करें - फीक्स यॉर ओन 'पिच'-गो डाउन जहां तक आप सहजता से जा सकते हैं। 'देन ट्राई टू गो अप एण्ड काम्फर्टेबली गो अप टू गं'। तीन सप्तक का संगीत हैं, ऐसा मानते हैं। 'बट वॉट इज़ द रेंज ऑफ ह्यूमन वाईस? नौर्मल ह्यूमन वाईस रेंज इज ऑफ टू आक्टेव।' प्रायः सभी कम्पोजिशन दो आक्टेव की ही हैं। मानिक वर्मा हेड ए वेरी लिमिटेड रेंज-लेकिन बहुत अच्छी गायिका थी। कार्यशाला दूसरा दिन, 14 मार्च, 2013

चैतन्यम् सर्वभूतानां
विवृदम् जगदात्मका
नाद ब्रह्म तदानन्दम्
अद्वितीयम् उपास्महे
नादो पासन या देवा
ब्रह्म विष्णु महेश्वरा
भवन्त्युपासिता नूनं
तस्मादेके तदात्मका

ये श्लोक संगीत रत्नाकर का श्लोक है-इसमें नाद की स्तुति की गई है-इसे राग जयजयवन्ति में बांधा गया है-रचनाकार है पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर। तो इसी से आज की शुरूआत करेंगे-गाइए।

इस श्लोक में कई अलंकार आन्दोलन, तान का अंग, धीमी मींड (जिसमें बीच का स्वर भी दिखता है), मुरकी, बहलावा आरोही मींड व आन्दोलन एवं खटका इन सभी सौन्दर्यलंकरणों का समावेश बड़ी ही सुन्दरता से किया गया है। ये सभी बातें ग्वालियर की गायकी में दिखती हैं।

गायन प्रारम्भ करने के शुरू में चार नियम जैसे कल आपको बताए थे। 'टेक अ डीप ब्रीथ, स्लोली, कुछ क्षण 'होल्ड' करें। चित्त एकदम शांत एवं एकाग्र।' सभी पूरी साँस लें 1234 कहकर आकार में 'सा' कहना है-सभी एक साथ 'सा' स्वर का उच्चारण करें। आपकी नेचूरल आवाज निकालना है। अपनी सहज आवाज को पहचानो और उसे ही इस्तेमाल करना चाहिए। पहले 'सा' फिर मन्द्र प फिर ग और फिर मध्य सप्तक का प इस तरह एक बार करें।

भारतीय संगीत की यह विशेषता है कि स्वर तो वे ही सात या 12 एक से ही हैं-परन्तु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'इन्डीव्यूजवेलिटि' को हमारे संगीत में विशेष महत्व दिया गया है। जब कोई गायक कोई राग गाता है उस दौरान वह राग उसका हो जाता है। अमीर खान का मारवा, बड़े गुलाम अली खान की तोड़ी, किशोरी अमोनकर का भूपाली-ये राग इन्होंने अपने कर लिए। अपनी साधना एवं अपनी 'इन्डीव्यूजवल केपेसिटी' से। इन रागों को इन कलाकारों ने अपना कर लिया। वे अमर हो गए।

अनुकरण एक हद तक ठीक है इसके आगे अनुकरण छोड़ो इनोवेशन शुरू करो। अपनी आवाज़ अपना संगीत, 'यू मेक यॉर सेल्फ स्टेण्ड आउट'। हमारे यहां वृन्द गायन की परम्परा नहीं है-एकल गायन की है-हमारे ड्रयेट की भी परम्परा नहीं है। पाश्चात्य संगीत में है। 'कोरस म्यूजिक' वहां काफी है उसी के 'रूल्स' वहीं 'डेवलप' हुए। हमारे यहां एकल प्रस्तुति 'इज सुप्रिम', जुगल बंदी होती है किन्तु कभी ध्यान से देखिए उसकी प्रकृति भी एकल ही है। क्योंकि जब एक गा या बजा रहा होता है तो दूसरा चुप रहता है। एक ही विचार रहता है जिसे दो लोग एक के बाद एक आगे बढ़ाते हैं।

अलंकार - आज हम अलंकारों पर चर्चा करेंगे। स्वरों को अलग-अलग तरह से सजाना उनका अलंकरण करना 'अलंकार' कहलाता है। स्वरों के अलग-अलग 'पैटर्नूस' बनाना। और उनका एक अभ्यास क्रम बनाना इसे ही अलंकार कहते हैं।

स्वर, स्थिर, ध्वनि, पिच, सप्तक इन पर कल हमने चर्चा की। आज इससे आगे बात करते हैं। सबसे पहले लय की बात करेंगे। लय क्या है? 'रेगूलेटिड टाईम' इज लय। स्वराभ्यास में स्वर के स्थान गले में बैठाना और उन्हें समय के समान विभाजन के साथ गाना इस को लय कहते है। लय की इकाई - मात्रा है। 'मेजरमेन्ट ऑफ रिद्म' इज मात्रा। बोल, विभाग, ताली, खाली इन सब से मिलकर ताल बनती है। लय प्राकृतिक होती है। सबसे मूल लय का प्रकार मध्यलय है। इसका पैमाना है मनुष्य के हृदय की धड़कन। हमारे व्यवहार की लय भी मध्यलय है। टहलने की लय विलम्बित लय है। हमारा सारा जीवन लय से संबंधित है, लय पर आधारित है। स्वर बच्चे में बाद में आता है परन्तु मां के गर्भ में ही हृदय की धड़कन शुरू होती है। इस तरह लय पहले आती है। 'बेसिक एप्रिसिएशन' लय का है-स्वर बाद में आता है। परन्तु यह भी सत्य है कि लय प्रधान चीज दीर्घकालीन नहीं है-परन्तु स्वर प्रधान चीज दीर्घकालीन है।

आकार में आलाप करें एवं बोलालाप करें तो लय का काम बंदिश के शब्द करते हैं। अलंकार में स्वर भी हैं और लय भी है-स्वरों की लयबद्ध रचना को अलंकार कहेंगे। स्वर का लय के साथ लगाव-स्वर की स्थिरता एवं स्वर क्रम के साथ उसका प्रस्तुतिकरण-अलंकार कहलाता है। इस तरह के अभ्यास से सांस की 'लेंथ' का पता लगेगा, इसी 'लेंथ' का यानि लम्बाई का एक-एक स्वर लगाना चाहिए। यानि इसी लय में अभ्यास होना चाहिए। अपनी आवाज़, अपनी प्रकृति के साथ कोई जबरदस्ती नहीं करनी है-जैसे जैसे आपका अभ्यास बढ़ने लगे उसके बाद फर्स्ट स्टेज - एक सांस में आरोह, एक सांस में अवरोह, सेकण्ड स्टेज - एक सांस में आरोह एवं अवरोह दोनों।

प्रदर्शन व विद्यार्थियों द्वारा उसको दोहराना-

आरोह - सा रे ग म प ध नि सां।
अवरोह - सा नि ध प म ग रे स।
आरोह - सा स रे रे ग ग म म पप धध निनि सां सां।
अवरोह - सां सां निनि धध पप मम गग रेरे सा सा
आरोह - सारे रेग गम मप पध धनि निसं रेंसां।
अवरोह - सांनि निध धप पम मग गरे रेस ऩिसा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आरोह - साग रेम गप मध पनि धसां निरें सांगं।

अवरोह - गंसां रेंनि संध निप धम पग मरे गसा।

आरोह - सा सा सा, रे रे रे, ग ग ग, म म म, प प प, ध ध ध, नि नि नि, सां सां सां।

अवरोह -सां सां सां, नि नि नि, ध ध ध, प प प, म म म, ग ग रे रे रे, सा सा सा। अब इन्हीं स्वरों को आकार में कहेंगे-

आकार में गाते समय हरेक स्वर का आघात स्पष्ट दिखाई देना चाहिए - ऑल यॉर सिंगिंग हेज टू बी नेचूरल। कठिन बात अभ्यास से आसान करना है, उसी से आनन्द आता है। सारेग, रेगम - तीन स्वरों के पैटर्न - सीधे - और उल्टे - आरोही क्रम व अवरोही क्रम। लौट के आने की क्रिया उसे कहते है पलटा। गाते समय गला तैयार करने के साथ-साथ कान भी तैयार होना ज़रूरी है। इसके लिए अभ्यास करना चाहिए। आधार स्वर के साथ पूरा 'कन्सनट्रेशन' जरूरी है। 'टेस्टिंग' बराबर चलती रहनी चाहिए कि स्वर बराबर तानपूरे के साथ मिल रहा है या नहीं। यदि तानपूरा सुर में मिलाया तो आधा गाना आपको आ गया - ऐसा बुजुर्ग कहते थे। अच्छा तानपूरा, अच्छे तार, सही जवारी, तानपूरा छेड़ने का सही तरीका, कितना प्रे-रर कहाँ देना। ये सभी चीजें जब बराबर, अपनी जगह ठीक होंगी तभी तानपूरा ठीक स्वर देगा। सरेगम रेगमप, गमपध इस तरह एक क्रम व सरे गरे, रेगमग, गमपम, मपधप इस तरह दूसरा क्रम। सगरेस ये क्रम क्रमशः आरोह में व संधनिसं क्रमशः अवरोह में चलेगा। इस प्रकार चार स्वरों के 'पैटर्न्स' बनेंगे। हर अलंकार को पहले सुर में फिर आकार में कहना है।

गायकी के आठ अंगः- विशेष रूप से ग्वालियर ख्याल गायकी के आठ प्रमुख अंग हैं। जिसके लिए ग्वालियर की गायकी 'अष्टांग गायकी' कहलाती है। वे अंग निम्नानुसार हैं-

पूर्वांग - स्थाई

उत्तरांग - अंतरा

आलाप, बोलालाप

तान, बोलतान

गमक, बहलावा

आन्दोलन, मींड, घसीट, सूत

ख़टका, मुर्की, कृन्तन, ज़मज़मा

लय - लयकारी

ग्वालियर घराने के आठ अंग हैं और इन सभी का प्रयोग ग्वालियर की गायकी में होता है। कई घराने किसी-किसी अंग को अधिक प्रधानता देते हैं। जैसे-किराना घराना स्वर प्रधान है। आगरा घराना लय प्रधान है। अब इसका मतलब ये नहीं है कि आगरा घराने में स्वर नहीं है या किराना घराने में लय नहीं है। एक बात और है कि स्वर लगाने का तरीका भी घराने की पहचान बताता है।

संगीत कार्यशाला 23-24 मई, 2013, मौरिस नगर, दिल्ली।

सर्वप्रथम मैंने संगीत कार्यशाला का उद्देश्य बताया एवं सभी का परिचय दिया। यह कार्यशाला राग भैरव व इसके रागांग रागों पर आधारित थी।

पं. विद्याधर व्यास ने सर्वप्रथम सभी का अभिनन्दन स्वीकार किया एवं रागों का परिचय करने के पूर्व नाद ब्रह्म की महिमा का दिग्दर्शन किया व नाद ब्रह्म का आव्हान किया। संगीत रत्नाकर के श्लोक का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ एवं श्लोक का गायन पिछली कार्यशाला का संक्षिप्त परिचय देने के पश्चात पंडित जी ने राग शब्द एवं राग का परिचय दिया। राग स्वरों की विशिष्ट रचना जिसमें आरोह अवरोह क्रम होता है। सप्तक के दो भाग है पूर्वांग व उत्तरांग। इन पूर्वांग एवं उत्तरांग में राग के दो विशिष्ट स्वर होते हैं। स्वरों की विशिष्टता है वादी + संवादी स्वर। संवाद के लिए दो लोगों को, दो चीजों का होना अनिवार्य है। 'सपोर्टिंग' स्वर अनुवादी हैं तथा स्वरों का चौथा प्रकार है 'विवादी'। विवाद करने वाले स्वर इनकी भी राग में जगह है। बहुत सी ऐसी रागें हैं जिनमें सौन्दर्य निर्माण के लिए विवादी स्वर का प्रयोग होता है। वर्ज्य स्वर - इनकी राग में जगह नहीं है। यानि राग रूपी राज्य में इनका प्रवेश निषेध है।

राग को हम व्यक्ति की तरह मानते हैं। राग की संकल्पना व्यक्ति के रूप में की गई है। इसकी 'टर्मिनोलोजी' देखिए-इस राग का चलन क्या है? राग रूप क्या है? राग को खड़ा करो। राग के साथ दोस्ती करो। राग का चेहरा कैसा है? राग की शक्ल क्या है? ये सभी बातें राग को व्यक्ति की तरह, मनुष्य की तरह रूप देती हैं। हर राग का एक अलग स्थाई भाव है-(जैसे हर मनुष्य का होता है) स्वरों के भिन्न-भिन्न लगाव एवं संवाद से बनता है भिन्न-भिन्न राग भाव।

बंदिश के जरिए राग अपने को प्रकट करता है। स्वरों के भिन्न-भिन्न भाव निर्मित होते हैं। स्वर में तो सदैव ही भाव निहित हैं। परन्तु जब हम उन स्वरों को विशिष्ट क्रम में लगाते हैं, आन्दोलित करते हैं, मींड से लेते हैं, गमक लेते हैं, कण लेते हैं तब राग बनता है। इस क्रम में बंदिश बहुत ही महत्वपूर्ण है। बंदिश राग के वस्त्र की तरह है। जैसे कोई अपने वस्त्र बदलता है तो नया दीखता है। उसी तरह राग की हर बंदिश राग का नया 'प्रोफाईल' दिखाती है। उसके नए-नए रूप सामने लाती है। राग तो वही है किन्तु फिर हर बंदिश की लय अलग होती है। बंदिश की लय अलग-अलग भाव पैदा करती है। अब गाने के चार नियम याद करें एवं आकार में स्वर लगाएं - (1) सीट प्रोपर्ली (2) रिलेक्स (3) कोन्संट्रेट, टेक ए डीप ब्रीथ (4) ओपन यॉर वाईस।

आकार, ईकार, उकार, एकार, ओकार, से सभी काकु हैं। जरूरत के मुताबिक लगाए जाते हैं। बंदिश में जो साहित्य है उसमें ये शब्द होते हैं। स्वरों को लम्बा करने के लिए ये वाहन की तरह इस्तेमाल होते हैं। स्वर के संवाहक होते है-ऐसा भी कह सकते हैं। अब हम भैरव राग के ऊपर बात करेंगे। पहले सा लगाईये। फिर रे̱ ये रे̱ आन्दोलित है। ऊपर का कण लेकर आता है। भैरव का ऋषभ और तोड़ी का ऋषभ अलग है। गंधार प्रकाशमान है, मध्यम नेचुरल है। फिर कोमल धैवत का लगाव ऋषभ जैसे ही होगा ऊपर से आता है। ऊपर का कण लेकर होता है-क्योंकि ऋषभ धैवत संवाद करते हैं। सारे̱गम पूर्वांग में जैसा स्वरों का रखाव है उसी तरह उत्तरांग में पध̱निसां है। राग का ऐस्थेटिक्स होता है। स्वरों का लगाव लगाते ही राग का स्वरूप सामने आता है। गाते हैं तो राग को 'फील' करना है। सिर्फ गाना ही नहीं गाना है। गाना तो सीखना है, लेकिन इसके आगे भी जाना है। उसे महसूस करना है।

राग के स्वर आपस में कैसे संवाद करते हैं-उनके उच्चारण समझना जरूरी है। अब भैरव के आन्दोलन कैसे हैं? ऋषभ मध्यम का कण लेकर आन्दोलित होता है। धैवत का आन्दोलन आरोहात्मक में कोमल निषाद का कण लगाते हुए होता है किन्तु अवरोह में शुद्ध निषाद से ही धैवत का आन्दोलन लेते हैं।

सा रे̱ रे̱ रे̱ सा, सा ग ग ग ग म रे̱ ऽ रे̱ ऽ सा। रे̱ रे̱ ग ग ग म रे̱ ऽ रे̱ ऽ रे ऽ सा अब देखिए पहला ग म - स्ट्रेट लगाव, दूसरा प्रयोग ग को थोड़ा हिलाते हैं। ग का थोड़ा हिलाना बहलावे जैसा है पूरा बहलावा नहीं है। इसे कण कह सकते हैं। उदारहण - सा ग ग ग ऽ ऽ ग ऽ ग ऽ म रे̱ ऽ रे̱ ऽ रे̱ ऽ रे̱ ऽ ऽ रे̱ ऽ ऽ ग ऽ ग ऽ ग म रे̱ ऽ ऽ ऽ रे̱ ऽ ऽ ऽ स ऽ ऽ ऽ। ग ग ग म म ग (ग) म, रे̱ ऽ रे̱ ऽ ग ग म म ऽ प प प- म से प तक जाने में पम पम प - सीधा जाएंगे-पहले म पर प का कण लेकर। ग, ग, ग, ग, म प ग म रे̱ ऽ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऽ रे ऽ ऽ स – स से रे पर जाओ, सा से ग पर जाओ – सा ग म – म म प इस तरह – फिर प ग म इस तरह सीधे भी आ सकते हैं और प म, पग मरे स – सा ग म प ग म रे ऽ स ग म प ग म रे ऽ रे ऽ स इस तहर भी आ सकते हैं। स रे ऽ रे ऽ ग म – ऐसे आरोही चाल थोड़ी कम है- ग म धु ऽ धु ऽ प ऽ ऽ। इस तरह धैवत व निशाद लेकर पंचम पर न्यास। ग म प धु धु ऽ – इस तरह नहीं जाएंगे – इस तरह जाने से कलिंगड़ा की छाया आ सकती है बल्कि कहना चाहिए आती है। धैवत हमेशा आन्दोलित रहेगा। सा ग म प, ग म धु ऽ ऽ धु ऽ प, म प, म धु धु प म प म – म प धु म प ग म रे ऽ ऽ रे ऽ ऽ सा। रे ग म रे ऽ रे ऽ सा ऽ।

भैरव एक बड़ा राग है। बड़े राग वे होते हैं जिनमें आन्दोलन, मींड, बहलावे, गमक ये सब क्रियाएं होती हैं। जिनमें विस्तार से आलाप किया जा सकता है। जिन रागों में इनका उपयोग नहीं होता या कम होता है वे छोटे राग होते हैं। उनमें खटका मुरकी का प्रयोग होता है। छोटे रागों में ठुमरी, दादरा इत्यादि गाते हैं। कुछ रागों को 'इन्स्ट्रूमेन्टलिस्ट्स' ने बड़ा कर दिया जैसे झिंझोटी है, देस है। वरना ये छोटा ही राग मानते हैं। आन्दोलन व मींड का प्रयोग करते हुए आएंगे तो राग बड़ा बनेगा – ग म धु ऽ धु ऽ प, ग म धु ऽ धु ऽ नि ऽ ध ऽ प। जैसा ग ब्राइट लगाते हैं, वैसा ही निशाद ब्राईट है।

बहलावे का प्रयोग – सा रे रे स ऩि सा, रे रे ग सा रे, ग ग म ग म, म प प ग म, रे ऽ ऽ रे ऽ ऽ साऽ

गम निनि धु ऽ धु ऽ प गम निनि धु नि सां –

ग म, धु धु नि ऽ धु नि सं नि धु प

ग म धु धु नि ऽ धु नि सं नि सं धुऽ धुऽप

ग म प ग म रे ऽ रे ऽ सा ऽ

तार सं पर जाने के तरीके-ग म धु ऽ धु ऽ निसं धु ऽ धु ऽ सां सां सां

गम धु ऽ धु ऽ धु सं – आरोही मींड

ग म ध ऽ नि ऽ नि ऽ सं – ऐसे भी

निसं – रेरेसांनि ये भी और निसं रे सां सां नि सां

निसां – निसारें सां नि सां धु ऽ ऽ धु ऽ ऽ प –

गम धनिसां ध ऽ ऽ प ऽ –

म प, म धु धु प म प ग ऽ ऽ ग म प ग म रे ऽ रे ऽ सा –

ग म धु धु सां सां –

सां रें रें सं, नि सं रें ऽ रें ऽ रें ऽ सां –

सां गं मं रें ऽ ऽ रें ऽ ऽ सां –

निसां निस रेंरें सांनिसां धुऽ धुऽ प –

धुऽ धुऽ सं ऽ धु नि धु धु प,

मप म धु धु पमप ग म प ग म रे ऽ रे ऽ रे ऽ रे ऽ स –

ऩिसा गम धु ऽ ऽ धु सां सां ऽ गं ऽ मं रें ऽ रें ऽ सां

सारें गं मंगंमं रेंऽ रेंऽ सं। निसं निसं रें रें सनि सं ध ऽ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धनिसां धनिसां धऽ, निधऽ धऽ धऽ पऽ

मप, मधधधपमप, गमप ग म रेऽ रेऽ साऽ

स ग ग, रे ग ग, रेग मप गमरेऽ रेऽ, रे ऽ म ऽ' रे ऽ सा ऽ

ये है भैरव राग में आलाप की क्रिया – कैसे-कैसे आगे बढ़ते हैं? कहां आन्दोलन, मींड की क्रिया करते हैं? ये क्रियाएं चार हैं। तो ये चार क्रिया कैसे करते हैं? आलाप, बोल आलाप, तान, बोल तान। ये हम आगे देखेंगे।

बोल आलाप का मतलब क्या है? बोल आलाप का मतलब है लयकारी का आलाप। जब हम बंदिश गाते है तो बोल का उपयोग क्यूं करते हैं? ठुमरी में तो बोल का उपयोग बहुत है तो ठुमरी में बोल का प्रयोग और ख्याल में बोल तान एक ही है या अलग है? ठुमरी में बोल का प्रयोग भाव बढ़ाने के लिए एवं उसका भावार्थ स्पष्ट करने के लिए किया जाता है। ख्याल में आलाप कैसे करते हैं? सांस से जैसे गमधधसं लिया तो इस प्रत्येक सांस पर आघात होता है। आघात हमें लय देता है। आघात का मतलब ही है लय-जैसे स्ट्रोक या बीट, यानि मात्रा। ख्याल के बोलालाप का उपयोग लयकारी दिखाने के लिए व स्वरों के काकु प्रयोग के लिए किया जाता है। ख्याल गायन में शब्दों का भावार्थ अपेक्षित नहीं है।

बोलालाप या जोड़ालाप में हम लय दिखाते हैं। ध्रुपद में नोम तोम के आलाप में पहले बोल रहित और बाद में बोल सहित आलाप करते हैं। ध्रुपद गायन में रे, त, न, न, नोम् ये शब्द लेकर आलाप करेंगे। एक हाथ से ताल देकर आलाप गाना है। इसके अभ्यास से लय का आलाप आसान हो जाएगा।

ताल कभी भी मात्राओं को याद करना नहीं है। ताल का ठेका या छन्द प्रमुख है। हर ताल का ठेका अलग है। ताल की सम कैसे आ रही है? उसका ठेके से छन्द बनता है। उसमें बंदिश कहां से उठ रही है? मुखड़ा गाना महत्वपूर्ण है, क्योंकि उससे ही हम सम पर आते हैं, लोगों की दाद मिलती है। सही तरह से सम पर आने पर तालियां मिलती हैं। सम पर आना यानि क्लाईमैक्स पाईंट पर आना अलग-अलग तरीके से। सम पर आने की, प्रेक्टिस करनी चाहिए। एक लय रखने के लिए आप मैट्रोनोम भी प्रयोग कर सकते हैं, लेकिन एक बात याद रखिए 'मैकेनिकल' लय और 'नेचूरल' लय में फर्क है। लय और लयकारी को कन्ट्रोल करें। 'परम्यूटेशन कॉम्बीनेशन' होते हैं। उनका अभ्यास करना होता है। तरीका सही होना चाहिए-मंजिल पर पहुंच ही जाएंगे।

जो हमने अभी आलाप किए आगे चलकर ये ही आलाप लय के साथ तान में बदल जाएंगे। दुगुन में तिगुन में चौगुन में-

छोटा ख्याल – राग भैरव, ताल तीनताल

स्थाई – तुम जागो मोहन प्यारे
सांवरी सुरत तोरी मनही भावे रे,
सुन्दर श्याम हमारे तुम,
जागो मोहन......

अंतरा – प्रातः समय उठि भानोदय भय
ग्वाल बाल सब भूपति ठाड़े
तुमरे दरस के काज आये
उठि उठि नन्द किशोर तुम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसके पश्चात् मध्य सप्तक के आलाप करें।

उदाहरण–

फिर इस बंदिश की लय बढ़ाकर–इस बंदिश के बोल लेकर आगे बढ़त करें। अब हम तानें करेंगे। इसमें मुखड़े का 'तुम' छोड़ दें और आठ मात्रा की तानें लें।

मध्य व तार के आलापगम धध निसां – सां – धनिसां रें रें रें सां –

सागं गं गं मं रें ऽ ऽ सां – रें रें सां नि सां, धनिसांरें

रेंरेंसांनि धनिधसं धरें रेंरें सांनिसां रेंधऽधऽ

गमप गम म ध ध ध प म ग म रे ऽ ऽ रे ऽ

रेग मप गम रे ऽ स

– तानों का अभ्यास–उदाहरण–

आरोहात्मक तानें–

1) गमपमगरेसा, गमधध पम गम रेसा, रेग मप गम धपमगरेसा, निस गम धध प– गम रेसा, –ऩिसा ग ग रे सा ऩिध, ऩिसा रेरे सऩिसा, गम गम रेसा ऩिरेस ऩिसा,

गम पप मग रेसा ऩिरे सऩिसा

रेगमप गम रे – गम धध पम पप मग रेरे सऩिसा

2) गम ध नि धप मग रेरे साऩिसा। ऩिरे स ऩिसा

गम ध नि धप मप गम गरे साऩिसा, गम ध नि नि धप

गम ध निसां निधप मग, ऩिस ऩिरे साऩिसा

गमध निसां, गंरेंरें सांनि धप मग रेसा ऩिसा

चऩिसा गम ध निसंनि धप मग रेसाऩिसा

निसा गम धनि रेसांनि धप मग रेसा ऩिसा

अवरोहात्मक तानें–

सांनि धप मग रेसा, रेंसां निध मग रेसा, गंमं रेंसां निध पम गरेसा

रेंगं रें सांनिधप मगरेसा, धनि धप मग रेस ऩिसा, गंमं – गरे सा – निरेंसां, गं – गं – गंगं रेंसा ऩिरेसा

छोटा ख्याल–एकताल –

सरल तानों का अभ्यास करने के लिए मध्यलय सबसे उत्तम है–

जागो ब्रज राज कुंवर नन्द के दुलारे – ए ए ए

जमुना में गेंद डाले ग्वाल बाल सब हारे

काली फुफ्कार देत श्याम ही एक तारे

अब आलाप करेंगे–उदाहरण–

साग – मप मपम – गम धनि धप मप ग – मप गम रे ऽ रे ऽ स ऽ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गम धु ऽ ध ऽ नि नि धुनिसं धुऽ, धुनिरेंसंनिसंधुऽ धुनिसं धुऽ निधुऽ मप गम रेऽ सऽ

गम धुधु निनि निधु – निधु निधु निधु सं गमधु धु सं

राग रूप के स्वर, यानि राग पहचान के स्वर। स्वर संवाद के स्वर – यानि उस राग में कौनसे स्वरों के संवाद हैं? खटका मुरकी के स्वर – यानि सजावट कहां-कहां हो सकती है? इस तरह स्वरों को पहचान कर बढ़त करें। यह समझ कर कि स्वरों के आपसी संबंध कैसे हैं?

प्रत्येक राग का एक स्थाई भाव होता है। फिर बंदिश का अपना भाव होता है। किसी राग का स्थाई भाव आपके भाव से 'मैच' करता है तो वह राग आपको अच्छा लगता है। प्रत्येक बंदिश के दो भाव होते हैं। बंदिश के अर्थ का भाव और बंदिश की स्वर संगतियों का भाव, ये दोनों अलग-अलग होते है। शृंगार के कई 'लेवेल्स' है और वे सब शब्दार्थ पर निर्भर करता है। कई बंदिशें ऐसी हैं कि जिनके शब्द तो काफी श्रृंगारिक है लेकिन स्वर रूप इतना सुन्दर है कि उन्हें हम छोड़ नहीं सकते, तो ऐसे में उनके स्वर रूप को रखकर शब्द रूप को छोड़ सकते हैं। शब्द बदल सकते है। तराने के बोल 'फिट' कर सकते हैं। स्वरों का भाव उन स्वरों में निहित काकु से बनता है। स्वरों के संतुलन को देखना है।

राग भैरव बड़ा ख्याल–

बालम वा मोरे सं

ऽ ऽ ऽ ऽ सां

सदा रंगीले

हुं तो तुम बिन

तरस रही ली ऽ ऽ ऽ

दरसन बेग दिखाओ

लेहुं बलै ऽ ऽ ऽ ऽ यां

अब इस बंदिश के शब्दों पर गौर करें।

ये बलैयां लेने की प्रक्रिया – ये सब मीडिएवल पीरियड के समाज की बातें हैं। सदारंग यानि 'नियामत खान', मोहम्मद शाह रंगीले, जो दिल्ली के बादशाह थे, उन को अपना नायक माना और उनके प्रति सारी बंदिशों को समर्पित किया।

ये सारा मीडिएवल पीरियड का 'सोशल सेटअप' है। सारी बंदिशें स्त्री वाची हैं, पुरूष वाची बंदिशें नहीं मिलती हैं। 85 प्रतिशत बंदिशें नायिका वाची हैं। शेष 15 प्रतिशत बंदिशों में कुछ प्रकृति संबंधी, कुछ धार्मिक बंदिशें कुछ नीतिवाची बंदिशें है। बंदिश के शब्दों को समझना चाहिए। हम जो गा रहे हैं उसके साथ हमारी कितनी एकरूपता बनती है? हम उसका आनन्द लें व सामने वालों को भी उस आनन्द का अनुभव करा दें यही अपेक्षित है।

तिलवाड़ा एवं झूमरा ये तालें ग्वालियर की ख़ासियत है। विलम्बित तीन ताल जयपुर की ख़ासियत है। झूमरा जिसके पहले धिं में एक) मात्रा का अंतराल रहता है, या कहें झोल रहता है, वो ग्वालियर घराना की खासियत है। झूमरा सीधी मात्रा वाला (यानि बिना झोल के), वह किराना की खासियत है। अमीर खान इसी झूमरे के ठेके के साथ में गाते थे।

भैरव का ये बड़ा ख्याल – तिलवाड़ा में है। तिलवाड़ा ताल के बोल हैं–धा तिरकिट धिं धिं धा धा तिं तिं ता तिरकिट धिं धिंधा धा धिं धिं। आलाप एक ही गति में होना चाहिए जैसे–रे रे स – ध़ ध़ सा – रेग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

<u>रे</u> ग ऽ ऽ ऽ <u>रे</u> ग म <u>रे</u> ऽ <u>रे</u> ऽ स <u>रे</u> <u>रे</u> सा एक स्वर का बहलावा गंधार पर तथा आन्दोलन के साथ एवं मींड के साथ धस मींड।

प्रस्तुतिकरण के समय आलापी के बाद बोलालाप शुरू करते हैं। थोड़ी लय बढ़ाकर ये बोलालाप बोल के साथ भी कर सकते हैं और आकार के साथ भी। बोलालाप में लय बढ़ जाती है तो उसमें गमक लेते है। यहां ये जानना ज़रूरी है कि बहलावे की लय बढ़ जाती है तो वही गमक बनता है। पहले आकार के साथ बोलालाप और उसके पश्चात् अब बंदिश को लेकर। बंदिश को बीच-बीच में से तोड़ सकते हैं-जैसे बालमवा मोरे सैंया। अब इन शब्दों का बीच में से काटना नहीं है।

बालम को - बा ऽ ऽ ऽ ल ऽ ऽ म ऽ ऽ ऐसे करेंगे तो सुन्दर लगेगा पर बा ऽ ऽ ऽ बा ऽ ऽ बा ऽ ऽ ऐसे करना सुन्दर नहीं लगता शब्दों को सुन्दरता से तोड़ें। अब इसमें लयकारी करें, तिहाइयां लें अच्छा लगेगा। अब आगे देखिए, सईंया में ईकार मिल गया- सईं .... ई.... ई.... ई... यां... इस तरह सुर को बढ़ाने के लिए। बंदिश को सुन्दर बनाओ, अलंकारों से मींड से आन्दोलन, बहलावे, गमक, खटका, मुरकी, इन्हीं से सजाइए। बोलालाप के बाद द्रुत तानें लेनी चाहिए।

यहां हम कुछ अवरोही तानों के उदाहरण देखते हैं-

सां नि <u>ध</u> प म ग <u>रे</u>स ऩिसा

<u>रें</u>सां - नि<u>ध</u>प म ग <u>रे</u> स ऩि सा

गं गं <u>रें</u> सां नि नि <u>ध</u> प म ग <u>रे</u> स ऩि सा। <u>रे</u> ग म ग <u>रे</u> सा ऩि सा

कार्यशाला - दूसरा दिन - 24 मई, 2013

औपचारिक भाषण एवं अभिनन्दन के पश्चात् कार्यशाला का प्रारम्भ-

नाद ब्रह्म की उपासना एवं श्लोक का गायन

भैरव अंग पर संक्षिप्त चर्चा के पश्चात आगे बढ़ते हैं- आविर्भाव-तिरोभाव की एक सुविधा हमें दी गई है। हम किसी एक राग को दिखाते हुए दूसरी राग में चले जाएं रक्ति के लिए और फिर पुनः उसी राग में लौट कर आते हैं यह अविर्भाव एवं तिरोभाव कहलाता है।

भैरव राग की कल की कुछ बातों की पुनरावृत्ति करते है। पहले भैरव राग के आरोह व अवरोह का गायन करते हैं। गायन-

पूर्वांग उत्तरांग का संवाद क्या है? संवाद तीन है-

सा सां, स प व सा म। संवाद के लिए एक से अधिक स्वरों का होना आवश्यक है।

भैरव की पकड़ - ग म <u>रे</u> ऽ <u>रे</u> ऽ <u>रे</u> ऽ सा

ग म <u>ध</u> ऽ ध ऽ <u>ध</u> ऽ प

रागांग पद्धति - रागांग 'क्लासिफिकेशन' सिस्टम का संक्षिप्त परिचय-इस पद्धति में एक अंग है, ओर उसके अंगभूत राग हैं जिन्हें रागांग राग कहा जाता है। उदाहरण के तौर पर कान्हड़ा। अब कान्हड़ा अंग एक है <u>नि</u>प, <u>ग</u>म, रेसा और उसके अंगभूत जितने भी राग हैं उनमें ये कान्हड़ा अंग, जो एक स्वरों का गुच्छा है या स्वरों को लेने का एक तरीका है, उसका होना आवश्यक है। आज हम भैरव अंग के रागों की चर्चा करेंगे।

बंदिश - भैरव तीनताल-

तुम जागो मोहन प्यारे एवं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कलिगड़ा – अब हम राग कलिगड़ा की चर्चा करेंगे। कलिंग प्रदेश से हो सकता है इसका कोई संबंध हो। कलिगड़ा चंचल प्रकृति का राग है। बड़े ख्याल नहीं मिलेंगे।

सारे गम पध निंसा। सां नि ध प म ग रे सा जाति सम्पूर्ण-सम्पूर्ण, सरल, चंचल प्रकृति का राग है। इसमें बहलावा आंदोलन मींड नहीं होती। क्योंकि ये अलंकरण किसी राग को गंभीरता देता है। राग कलिगड़ा में पंचम स्वर केन्द्र बिन्दु है। इसका विस्तार थोड़े समय में ही किया जाता है। सा ग म ध प, प ध प म प, ग म ग म ग रे सा सा, गम प, म ग रे सा, सा रे ग, रे ग म, गमग, मप ध प प ध नि स रें सां नि ध प। प ध नि, नि ध प, म ध प, सा रे ग म प ध प। प ध नि सां रें सा नि ध म ग म म म ग रे सा। रे ग म प ध म-।

अब हम भैरव थाट के अन्य रागों का दिग्दर्शन करेंगे। सबसे पहले लेते हैं राग जोगिया। जोगिया एक प्रसिद्ध राग है। अत्यधिक करूण रस युक्त राग है। शोक, विरह-कौन सी स्वर संगति के साथ करूण रस पैदा होता है। इस पर थोड़ा विचार करेंगे। प्रमुख स्वर हैं- रे म ध – इन स्वरों पर न्यास- सा रे म, रे म प ध, मप, मगरे, रे म, पम, ध़ सा। सारे मप (नि)ध (नि)ध (नि)ध । इस तरह धैवत पर सीमित आन्दोलन एवं निषाद कण रूप में लेते हैं।

प ध सां रे, म ध म ग रे ध़ सा रे, म, पध सां – पूरा करूण रस है। पिया के मिलन की आस ये बंदिश उस्ताद अब्दुल करीम खान ने गाकर अमर की दी है।

उत्तरांग प्रधान राग है। ध प म रे – सा – रे म प ध सां – गंधार व निशाद कण स्वर हैं।

रामकली – ये राग भी भैरव थाट का है। इसमें स्वरों के वैसे आन्दोलन नहीं जैसे भैरव में हैं। यानि रे ध के आंदोलन नहीं है। रे ध कोमल है। म तीव्र का किंचित प्रयोग कोमल निषाद की संगति में होता है।

कलिंगडा की तरह पंचम पर न्यास किया जाता है। फर्क सिर्फ इतना है कि इसमें मध्यम तीव्र लिया जाता है। इसकी बंदिश हूं तो बार-बार तोरी याद करत हूं, का अभ्यास करेंगे।

रागों की अलग-अलग प्रकृति होती है। जैसे चंचल प्रकृति, गम्भीर प्रकृति एवं क्षुद्र प्रकृति। तो रामकली क्षुद्र प्रकृति का राग है।

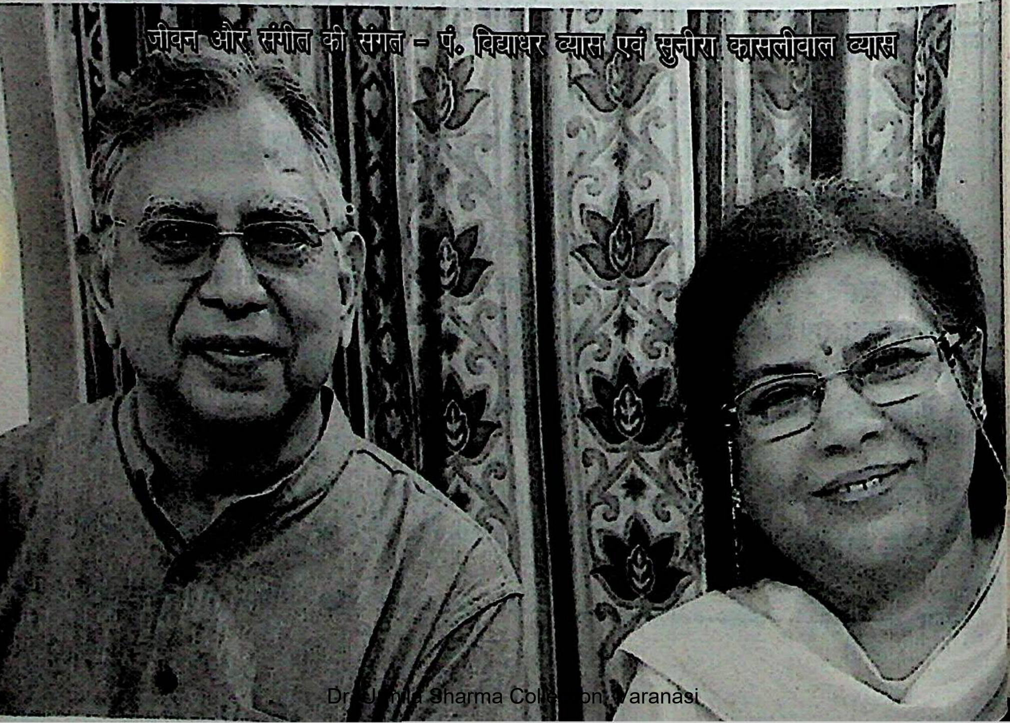
जीवन और संगीत की संगत - पं. विद्याधर व्यास एवं सुनीरा कासलीवाल व्यास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रेरणात्मक अनुभव

जितेन्द्र खरे

मेरे लिए ये बेहद गौरव और खुशी की बात है कि मैं इस शुभ अवसर पर माननीय पंडित जी के लिए अपने शब्द समर्पित कर रहा हूँ, वह भी ऐसे मंच पर जहां मूर्धन्य कला विशेषज्ञों की एक पूरी शृंखला से रूबरू हुआ जा सकता है। इन सभी से जुड़ने का सौभाग्य तो मुझे नहीं मिला लेकिन कुछ महत्वपूर्ण कड़ियों से मेरा जुड़ाव अवश्य रहा है जिससे मैं काफी प्रभावित हुआ । इनका जिक्र मैं अवश्य करना चाहूँगा। ये नाम हैं पं. विद्याधर व्यास जी एवं सुनीरा कासलीवाल जी। पंडित जी ग्वालियर घराने से सरोकार रखते है तथा अपनी रचनात्मक सोच, कलात्मक दृष्टि एवं नैसर्गिक प्रयोग के माध्यम से आपने हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत को एक नया एवं वृहद आयाम दिया है।

आपने समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर के पश्चात् हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में डाक्टरेट की डिग्री ली। आप गवर्नमेंट म्यूजिक कॉलेज, जयपुर के प्रिन्सिपल रहे, यूनिवर्सिटी ऑफ मुम्बई में विभागाध्यक्ष रहे तथा भातखण्डे म्यूजिक इंस्टीट्यूट, लखनऊ में वाइस चांसलर पद पर सुशोभित रहे। आप आई.टी.सी. संगीत रिसर्च अकादमी, कोलकाता में एक्जीक्यूटिव डायरेक्टर रहे तथा आपको संगीत नाटक अकादमी अवार्ड से भी नवाजा गया। आप दूरदर्शन एवं आकाशवाणी के लोकप्रिय एवं शीर्ष कलाकारों में शुमार हैं और आपके कई कैसेट्स एवं सीडी उपलब्ध हैं। पूरे देश में सफल कन्सर्ट सीरीज के साथ ही आपके यू. एस.ए., यूरोप, मॉरीशस में किए गए कन्सर्टस भी लम्बे समय तक यादगार रहेंगे। आपकी उत्कृष्ट कृति सुनेरी माइन्ने निर्वाल्के बलराम एवं कलर्स ऑफ दी नाइट काफी चर्चित एवं लोकप्रिय हैं।

प्रोफेसर सुनीरा कासलीवाल जी हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत तथा लोक-संगीत विशेषकर राजस्थानी वाद्य संगीत में एक विशिष्ट स्थान रखती हैं । आप ने संगीत में एम ए. एवं इंस्ट्रूमेंटल म्युजिक में डाक्टरेट की डिग्री ली। आपने दिल्ली विश्वविद्यालय में लेक्चरर के रूप में 10 साल की सेवा के पश्चात आठ वर्ष रीडर के रूप में योगदान दिया। इसके बाद 2004 से आप प्रोफेसर के तौर पर संगीत की शिक्षा प्रदान कर रही हैं। आपकी कई रचनाओं ने सफलता के सोपान स्थापित किए जिनमें से – क्लासिकल म्यूजिकल इंस्ट्रूमेंट्स, सुर तार तथा रावनहत्था- एपिक जर्नी आफ एन इंस्ट्रूमेंट इन राजस्थान उल्लेखनीय हैं। आपको सुरमणि अवार्ड, साधना प्रशांति अवार्ड तथा नादरत्न सम्मान से नवाजा गया है। आप आकाशवाणी एवं दूरदर्शन पर नियमित रूप से सक्रिय हैं तथा पूरे देश में एवं विदेश में भी अनेक संगीत समारोहों में आपने काफी ख्याति अर्जित की है। आप अभी भी इंस्ट्रूमेंट्स मेकर्स ऑफ मिराज आदि कई प्रोजेक्टस पर काम कर रही हैं एवं संगीत की दुनिया को एक अप्रतिम आयाम देने में जुटी हैं।

आप दोनों अकूत प्रतिभा के धनी तो हैं ही, अपने विवेकपूर्ण एवं तर्क शक्ति युक्त, संवेदनशील एवं उत्प्रेरक विचारों से ओत प्रोत एक उदार व्यक्तित्व को संजोए सदा धनात्मक ऊर्जा बिखेरते हुए प्रतीत होते है। हर क्षेत्र में आपके प्रखर विचार सृजनात्मक ऊर्जा का संचार करते हुए उत्कर्ष की अनुभुति कराते हैं। आपसे मिलकर आपकी अभिव्यक्ति से रूबरू होना अपने आप में एक उपलब्धि है। आप दोनों इसी तरह हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत को नई उंचाईयां प्रदान करते रहें, यही दुआ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सीखना जैसे उत्सव हो

दिव्या कौ

गुरु जी से संगीत सीखने की क्रिया, एक मंजिल पहुंचने का साधन नहीं; वही एक मंजिल बन जा है। जब एक शिष्य गुरु जी के सामने संगीत के क्लास मे बैठता है तो उसे अपनी मंजिल मिल जाती है।

गुरु जी पंडित विद्याधर व्यास, सुप्रसिद्ध ज्ञानाचार्य स्व पं. नारायण राव व्यास के सुपुत्र हैं; जो खुद संगीत महर्षि विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के शिष्य थे। इस प्रसिद्ध वंशावली के हकदार होते हुए आज पं. विद्याधर व्यास ग्वालियर घराने की पलुस्कर पद्धति के प्रतिनिधि हैं। उनका शास्त्रीय संगीत का प्रस्तुतिकरण श्रेष्ठ एवं उच्च स्तर का है; संगीत के सब विषयों पर उन्होंने दीर्घ चिंतन मनन किया हुआ चाहे वह शास्त्र ज्ञान हो या प्रायोगिक। गुरु जी के भाषण एवं कार्यविधि प्रदर्शन बहुत श्रेष्ठ एवं उच्च स्त के और मन मुग्ध करने वाले होते हैं। देश के कई प्रतिष्ठित संगीत संस्थानों के प्रशासक बन कर गुरु जी यशस्विता प्राप्त की है। इतनी प्रसिद्धि प्राप्त करने के बाद भी जब पं. विद्याधर व्यास जी अपने शिष्यों संगीत सिखाने बैठते हैं, तब वह एकदम विनम्र, विनीत एवं अमहत्वकांक्षी प्रतीत होते हैं। शिष्य वर्ग उन प्रसिद्धि एवं प्रतिष्ठा से घबराते नही हैं। गुरुजी इस बात पर जोर देते हैं कि शिष्य एकदम शांत तनावमुक्त रहें। स्वर साधना करते समय, शरीर एवं चित्त एकदम शिथिल व शांत होना चाहिए। यह उन पहला सबक है।

यहां पर मैं गुरुमां डॉ सुनीरा कासलीवाल का जिक्र करना चाहती हूं, जो दिल्ली यूनिवर्सिटी संगीत संकाय में प्रोफेसर हैं। वह एक कुशल सितार वादक, उत्कृष्ठ प्रस्तुतकर्ता, सफल शिक्षक, शोध और लेखक भी हैं। उनका स्वभाव प्रसन्नचित्त एवं आकृष्ट करने वाला है। हर काम वह बहुत उमंग उत्साह से करती हैं, गुरु माँ की मेहमाननवाजी भी उच्च स्तर की है। शिष्यों को उनसे बहुत प्रोत्सा मिलता है। यहां पर एक विशेष तथ्य का उल्लेख करना चाहूंगी कि पं. विद्याधर व्यास का एक दीर्घावधि ध्येय एवं बृहत स्तरीय लक्ष्य है। चाहे वह मंच प्रदर्शन कर रहे हों, संगीत शिक्षा प्रदान कर रहे हों या संगी के विषय में भाषण दे रहे हों, यह लक्ष्य उनके ध्यान में हरदम रहता है। इस विचारधारा को गुरुजी ने सा मुख्य तथ्यों में बांटा है, जिनका उल्लेख मैं नीचे करूंगी। अब मैं गुरुजी के सात मुख्य उद्देश्यों की च करती हूं। पं. विद्याधर व्यास ग्वालियर घराने की पलुस्कर पद्धति का प्रचार करना चाहते हैं (उदाहरण किस तरह राग का ढांचा बनाया जाता है, राग बढ़त की प्रक्रिया की कल्पना किस तरह की जाती है; बो आलाप एवं तान में विशिष्ट लयकारी के प्रयोग कैसे होते हैं; द्रुत तान, खासकर के अवरोही तानों प्रदर्शन कैसे होता है इत्यादि)। पं. विष्णु दि. पलुस्कर ने ग्वालियर घराने की गायकी की शिक्षा गुरु बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर से ली थी। पं. विष्णु दि. पलुस्कर का विशेष उद्देश्य था कि वे रागदा संगीत का प्रचार करें और इस उद्देश्य कि पूर्ति के लिए उन्होंने भजन की बन्दिशों का प्रयोग किया। भज के शब्द सरल होते थे जिनको आम जनता समझ पाती थी। जिस तरह उन्हों ने रागदारी संगीत और भज के प्रकार का समन्वय किया, उसको पलुस्कर भजन परंपरा कहते हैं। गुरु जी पं. विद्याधर व्यास इस भज परंपरा का प्रचार करना चाहते हैं।

पं. शंकर राव व्यास, पं. नारायण राव व्यास के भाई थे। वह एक कुशल एवं श्रेष्ठ कलाकार हों के साथ-साथ एक उत्कृष्ट बंदिशों के रचयिता भी थे। उनको आधुनिक समय का सदारंग माना जाता था

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुरु जी अपने चाचा, पं. शंकर राव व्यास के बहुत उत्कट प्रशंसक हैं, और वह अपने कार्यक्रमों में उनकी बन्दिशें गाते हैं, इन बन्दिशों को अपने शिष्यों को सिखाते भी हैं। इनका प्रचार करना एवं इनको लोकप्रिय बनाना, उनका उद्देश्य है।

पं. डी.वी. पलुस्कर, पं. विष्णु दि. पलुस्कर के निपुण एवं प्रतिभा सम्पन्न सुपुत्र थे। गुरु जी उनकी गाई हुई बंदिशों व भजनों का भी प्रचार करना चाहते हैं। गुरु जी पं. विद्याधर व्यास भी उच्चकोटि के रचयिता हैं। अपनी रची हुई खयाल, तराना एवं अन्य बंदिशों का प्रचार करना भी उनका उद्देश्य है। ख्याल बंदिशों के अलावा, कुछ ऐसे दुर्लभ एवं अप्रचलित संगीत के प्रकार हैं, जो अधिकतर ग्वालियर घराने में ही पाए जाते हैं, जैसे तराना चतुरंग और त्रिवट। गुरु जी पं. विद्याधर व्यास के पास इन प्रकारों का बहुत सुंदर संग्रह है। उनकी गायकी इतनी सौंदर्यपरक एवं सृजनात्मक है कि इन संगीत प्रकारों का प्रस्तुतिकरण अत्यंत मुग्ध करने वाला व आनंदमय होता है। उनकी तराना बंदिशों कि लयकारी अद्वितीय एवं श्रेष्ठ होती है। इन दुर्लभ बन्दिशों को लोकप्रिय बनाना भी एक लक्ष्य है। पं. विद्याधर व्यास के पूज्य पिता एवं गुरु पं. नारायण राव व्यास भी एक उत्कृष्ट गायक थे जिनकी बन्दिशें उनके रिकॉर्ड्स के माध्यम से बहुत प्रसिद्ध हुई। उन्होंने भी आम जनता में रागदारी भजनों का प्रचार किया जिससे लोगों को शास्त्रीय संगीत का कुछ ज्ञान हुआ। इन बंदिशों एवं भजनों को गुरुजी लोकप्रिय बनाना चाहते हैं। जब भी गुरु जी अपने कार्यक्रम का प्रस्तुतिकरण करते हैं या शिष्यों को सिखाते हैं, तब वह ऊपर लिखे सात विचारों को ध्यान मे रखते हैं। इस तरह ग्वालियर घराने की गायकी एवं बंदिशों को सुरक्षित रखा जा सकता है। गुरु जी से कोई भी राग सीखना एक उत्साह पूर्वक एवं उल्लास भरा अनुभव होता है, जैसे एक उत्सव मना रहे हों – 'तोरन से द्वार साजे, बाजत हैं शुभ के बाजे, आली वसन्त ऋतु आई।' मधुर और आश्चर्यजनक मोड़ एवं घुमाव का प्रयोग करते हुए जिस तरह से वह राग के स्वर अवयवों की विस्तार पूर्वक प्रस्तुति करते हैं, उससे मनमुग्ध करने वाली धुनों की उत्पत्ति होती है। राग की शुद्धता का मान, प्रत्येक मोड़ पर कायम रहता है।

अपने शिष्यों को गुरु जी राग का प्रत्येक पहलू अत्यधिक श्रम साध्य रूप से सिखाते हैं। उनकी राग बढ़त की बोल आलाप और बोल तान की रूपरेखा में ग्वालियर घराने की गायकी की विशिष्ट छाप होती है। क्लास के आरंभ में राग का पूरा ढांचा, आलाप के माध्यम से सिखाते हैं, उसके बाद राग वाचक स्वर, मुख्य स्वर समूहों की व्याख्या देते हैं, जिसमें विशेष ध्यान इस बात पर होता है कि वादी, संवादी, न्यास, ग्रह स्वर उभर कर सामने आ जाएं। राग बढ़त को रोचक, आकर्षक बनाने के लिए कई अलंकारिक तरीके अपनाए जाते हैं, जैसे बहलावा, मींड़, कण स्वर इत्यादि। इसके बाद गुरु जी तानों को विस्तृत रूप से सिखाते हैं। तानों के विविध प्रकार, एक एक कर के शिष्य से गवाते हैं, पहले सरगम फिर आकार के रूप में। एक दिन, क्लास में, गुरु जी ने एक विशेष बात बताई, कि जब बहलावे को, जोर से, स्वरों में घनत्व दिखाकर और तेज गति से गाया जाता है, तब वह गमक बन जाती है। पं. विद्याधर व्यास इस बात पर बहुत जोर देते हैं, कि सौन्दर्य परक आलाप, बोल आलाप, बोल तान व तान बनाना आवश्यक है। सामान्य, साधारण तान एवं बोल तान गाने कि वह राय नहीं देते। इनमें चमत्कार नवप्रवर्तन दिखाना महत्वपूर्ण है। कोई भी शास्त्रीय तथ्य सिखाने के बाद वह उसका सुन्दर प्रदर्शन गा कर करते हैं। इससे शिष्य के चित्त और याददाश्त में वह शास्त्रीय ज्ञान अच्छी तरह बैठ जाता है।

अपने शिष्यों को जो बंदिशें गुरु जी सिखाते हैं, वह घरानेदार, पुश्तैनी एवं पारंपरिक होती हैं। उनसे उच्च कोटि के संदेश एवं विचार प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए राग भूपाली में जो बढ़े ख्याल की बंदिश गुरु जी ने मुझे सिखाई, वह स्वामी तुलसी दास जी की रामायण से ली गई है, 'जब ही सब निरपत निरास भए, गुरु पद कमल वन्दे, रघुपत तब चाप समीप गए'।

गुरुजी एक एक शब्द का अर्थ समझाते हैं। बन्दिशों का साहित्यिक, ऐतिहासिक संदर्भ भी बहुत चाव से बताते हैं। 'रामायण में, जब सीता जी का स्वयंवर हो रहा था, तब, जब सब नरेश असफल रहे,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तो श्री राम ने, अपने गुरु के पद छू कर, धनुष उठाया।' यह इस बंदिश का अर्थ है। यह बंदिश सीखने का अनुभव एक दम अमूल्य था, जो कि कभी भूल नहीं सकते। पूरी बन्दिश, बार बार गाने से एक आकर्षक और प्रभावशाली समां बंध जाता है। गुरुजी ने बताया कि राग भूपाली के पांच स्वरों को एक विशेष रूप से लिया जाता है। पंचम से गांधार पर आते समय, मध्यम का आभास नहीं होना चाहिए। उसी तरह, तार षडज से धैवत पर आते समय निषाद का आभास नहीं होना चाहिए। जिस खास निपुणता एवं प्रविधि से यह प्रयोग किया जाता है, वह केवल गुरु जी ही सिखा सकते हैं, क्योंकि उनका स्वभाव इतना धैर्यपूर्ण है। अगर यह स्वर ठीक से नहीं लिए गए, तो राग शुद्ध कल्याण का आभास हो जाएगा। गुरूजी ने, राग कल्याण सिखाते समय, राग यमन से उसका तुलनात्मक अंतर बताया। उनका कहना है कि यह दोनों राग 80 प्रतिशत से 90 प्रतिशत समान हैं, परन्तु राग कल्याण में पंचम और षड़ज का बहुत्व होता है, और राग यमन में पंचम और षड़ज का अल्पत्व। यह तुलना गुरु जी ही, इतने चाव से, और इतनी सूक्ष्मता से, बता सकते थे।

पं. विद्याधर व्यास के गाने और सिखाने में रस, भाव, और शब्दों की प्रमुखता पर बहुत रुझान होता है। एक बार उन्होंने मुझे रस शास्त्र के बारे में, एक गहन जानकारी दी। उन्होंने समझाया कि प्रत्येक राग का एक 'स्थाई भाव' या रस होता है, लेकिन यह लय की गति या बन्दिश के शब्दों के अर्थ के साथ परिवर्तित हो सकता है। उदाहरण के लिए, जब विलंबित ख्याल गाया जा रहा है, तो गंभीर शांत रस की उत्पत्ति ही होती है द्य चाहे उस राग की प्रकृति कुछ और हो। अगर एक गंभीर रस के राग में, बन्दिश के शब्द श्रृंगारिक भाव अभिव्यक्त कर रहें हैं , तो उस बन्दिश को गाने में श्रृंगार रस का आभास होता है। जब मैंने गुरु जी से राग भूपाली की बंदिश 'पायलिया बाजे, बाजे झनन' सीखी, तब मुझे कुछ ऐसा एहसास हुआ। यह बन्दिश सिखाते हुए गुरु जी ने ऐसे मधुर आकर्षक एवं सौन्दर्यपरक स्वर समूहों का प्रयोग किया कि एक चंचल, श्रृंगार रस की स्वर आकृति का निर्माण हो गया। जब पं. विद्याधर व्यास राग बिहाग की बंदिश 'झनन झन मोरी बाजे पायलिया' सिखा रहे थे, तो उन्हे बहुत खुशी हुई कि इन शब्दों को लेकर सृजनात्मक, रचनात्मक कल्पना के उपयोग से नए-नए काकू प्रयोग संभव हैं। इससे विशेष आनन्द की उत्पत्ति होती है। संगीत का मुख्य लक्ष्य है आनन्द प्राप्ति। गुरु जी पं. विद्याधर व्यास से संगीत सीखने में हम निश्चिंत रहते हैं कि अगर, उन्होंने ने किसी संगीत सिद्धांत के बारे में अपनी राय प्रकट की, तो वह एक अंतिम निर्णय होता है, जैसे कि मुहर लग गई हो। कुछ उदाहरण दे रही हूं – जैसे कि राग बिहाग के रिषभ को केवल छू कर आ जाते हैं, बहुत अल्पत्व रीति से लेते हैं, राग कल्याण के ऋषभ पर स्वल्प-विराम लेते हैं।

जिसका अर्थ है, पूर्ण विराम का चौथाई भाग, राग कल्याण में सब स्वर होने के कारण , उसकी विस्तारित्ता अधिक होती है और उसको एक उच्च्य सौन्दर्यपरक ऊंचाई पर पहुचा देती है, गुरु जी कहते हैं कि राग भूपाली में दो स्वरीय तान ठीक लगती है। एक बार गुरु जी ने लयकारी की बहुत सरल परिभाषा दी। उन्होंने कहा कि जब राग बढ़त में, आलाप या तान में बोल लिए जाते हैं, तो स्वरों पर आघात पड़ता है, और इससे लयकारी का निर्माण होता है। लयकारी की इतनी सूक्ष्म परिभाषा शायद ही किसी ने बताई होगी। इतने प्रतिभा पूर्ण संगीतकार, व्यस्त व प्रसिद्ध होने के बावजूद, गुरु जी अपने शिष्यों को जो समय देते हैं, उसमें बहुत अनुशासन रखते हैं। जब शिष्य उनके पास सीखने आते हैं, तो उनका समय बर्बाद नहीं होने देते। समय की कद्र करते हैं। गुरु जी के व्यक्तित्व के इस विशेष गुण को मैं शत शत प्रणाम करती हूँ।

मैंने इस लेख के प्रारंभ में कहा था, कि गुरु जी से संगीत सीखना एक उत्सव मनाने के समान होता है द्य मधुर सुन्दर सांगीतिक आकृतियों से एक आनन्दमय सफर बनता है। यह सफर ही, एक मंजिल बन जाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पलुस्कर भजन गायन परंपरा के साथ

विनीत गोस्वामी

नाहं वसामि बैकुंठे योगिनां हृदये न च।
भद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारदः।।

'मैं ना तो केवल वैकुंठ में निवास करता हूं और ना ही योगीजनों के हृदय में मेरा निवास होता है। मैं तो उन भक्तों के पास सदा रहता हूं जहां मेरे भक्त लीन होकर मुझको भजते हैं, मेरे नाम का संकीर्तन करते हैं'।

भारतीय संस्कृति के घटकों में दो घटक आध्यात्म और संगीत एक दूसरे के पूरक रहे हैं। प्राचीन काल से ही ईश्वरीय उपासना का प्रथम साधन संगीत ही माना गया है और ये दोनों घटक ही ईश्वर प्राप्ति के संपूर्ण साधन माने गए हैं। संगीत का आधार नाद है और अध्यात्म का आधार भक्ति। प्राचीन ग्रंथों में नाद की महिमा का वर्णन करते हुए मतंगेंत वृहद्देशी में कहा गया है-

न नादेन बिना गीतं न नादेन बिना स्वराः।
न नादेन बिना नृत्यं तस्मान्नादात्मकम् जगत् ।।
नादरूपः स्मृतो ब्रह्मा नादरूपो जनार्दनः।
नादरूपा पर शक्तिनादरूपो महेश्वराः।।

अर्थात नाद के बिना ना स्वर है, ना गीत है, ना नृत्य है। यहां तक कि संपूर्ण जगत ही नाद पर अवलंबित है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी नाद रूप हैं, उनकी पराशक्ति भी नादरूप है। इस प्रकार संपूर्ण सृष्टि ही नादात्मक है। नाद को ही चैतन्य, अद्वितीय, आनंदात्मक, नादब्रह्म आदि बताते हुए पंडित शारंगदेव ने अपने ग्रंथ संगीत रत्नाकर में कहा है --

चैतन्यं सर्वभूतां विवृत्तं जगदात्मका। नादब्रह्म तदानंदमद्वितीयमुपास्महे ।।
नादोपास्नया देवा ब्रह्म विष्णु महेश्वराः। भवन्त्युपासिता नूनं यस्मादेके तदात्मकाः।।

अर्थात् जो समस्त प्राणियों में चैतन्य है, जगत की आत्मा के रूप में प्रकट हुआ है,नाद ब्रह्म है तथा आनंद स्वरूप है उसकी हम उपासना करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश नाद की उपासना द्वारा निश्चित रूप से पूजे जाते हैं क्योंकि ये उसी के रूप हैं।

यूँ तो भक्ति संगीत परंपरा हर धर्म एवं हर समुदाय में अटूट रूप से विद्यमान रही है परन्तु हिंदू धर्म में सनातन रूप में संगीत की विस्तृत सुदृढ़ और अलौकिक संगीत परंपरा के प्रमाण मिलते हैं। हिंदू धर्म में संगीत की परंपरा की दृष्टि से धर्म का उद्देश्य जीवन में कर्म क्षेत्र का निर्वाह करते हुए तथा पूरी ईमानदारी से अपने दायित्वों का निर्वहन करते हुए अंततो गतवा ईश्वर को प्राप्त करना है, किस परिस्थिति में क्या उचित है और क्या अनुचित इसका निर्णय जनसाधारण धार्मिक आधार पर ही करता है। हिंदू धर्म में ईश्वर प्राप्ति के अनेक मार्ग बताए गए हैं ,जिनमें से भक्ति मार्ग प्रमुख है प्रत्येक व्यक्ति योगी अथवा बैरागी नहीं हो सकता, वैराग्य तपस्या एवं साधना का क्षेत्र है ,अतः जनसाधारण के लिए ईश्वर से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साक्षात्कार का भक्ति मार्ग ही श्रेयकर है। भक्ति शब्द ''भज्'' धातु में क्तिन् प्रत्यय लगाने से बना है जिसके आधार पर स्वरूप पाणिनी की अव्यध्यायी में'' स्त्रिमें ''क्तिन्'' सूत्र को देखा जा सकता है पाणिनि के अष्टाध्याई में भक्ति शब्द स्त्रीलिंग है तथा इसके अनेक अर्थ हैं जैसे- भिन्नता, पृथक्ता, बंटवारा, बां विभाग, वंश, विभाग करने वाली रेखा, उपचार, अनुराग, श्रद्धा, सम्मान, सेवा, पूजन आदि रूप 'भज् धातू का अर्थ, सेवा करना, कितन् प्रत्यय का अर्थ है 'प्रेम', भक्ति शब्द का अर्थ है प्रेमपूर्वक सेवा करना है सकता है, भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति 'भज सेवायां' बताई गई है जिसका अर्थ है, सेवा आराधना आदि उपासना शब्द का अर्थ है प्रभु के समीप बैठना किंतु विशिष्ट अर्थ में 'भक्ति शब्द का तात्पर्य है आस्था एवं श्रद्धा पूर्वक अपने ईष्ट की उपासना करना। अर्थात् भजन, कथा गुणगान करना, जहां गुणगान का प्रश्न होता है वहां गीत स्वतः ही निहित होता हैं और भावपूर्ण गीत ही संगीत की सृष्टि करता है। इसलिए भक्ति मार्ग संगीत का मार्ग है। यही कारण है कि भक्तिमार्गियों ने ईश्वर के लिए संगीत का सहारा लिया, भक्ति मार्ग में भक्त अपने आराध्य देव को प्रसन्न करने के लिए विभिन्न ललित कलाओं का आश्रय लेता है संगीत की स्त्रोतस्वनी भक्त कलाकारों के द्वारा निर्मल सुरसरि का रूप धारण कर लेती है, जिस प्रकार भागीरथ कष्ट साध्य तपस्या करके गंगा को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाए थे, उसी प्रकार भक्त कलाकार नाद की साधना द्वारा संगीत की निर्मल गंगा बहाते हैं, इसके निर्मल जल से स्नान करके ईश्वर का साक्षात्कार करते हैं, भक्ति केवल किसी एक धर्म विशेष तक सीमित नहीं है, प्रत्येक जीवंत धर्म में भक्त अवश्य होते हैं भक्तों से ही धर्म के संस्थागत स्वरूप में भावुकता आती है, हिंदू धर्म हो या सिख या फिर सूफी परंपरा मध्यकालीन भक्ति आंदोलन का प्रभाव सभी धर्मों पर पड़ा है। जब जब भारतीय संस्कृति पर विदेशी प्रभाव बढ़ा है तब तब भारतीय संस्कृति की रक्षा हेतु मनीषियों ने भक्ति मार्ग का सहारा लेकर भारत की प्राचीन संस्ंति को लुप्त होने से बचाया है। इसका सबसे सटीक उदाहरण भक्ति काल में देखा जा सकता है जब मुगल आक्रांता व मुस्लिम प्रभाव भारतीय संस्कृति को दिनों दिन निगल रहा था, तब सूरदास, कबीरदास मीराबाई, तुलसीदास आदि भक्त कवियों ने भक्ति काव्य की धारा से ना केवल भारतीय संस्कृति का पुनरुत्थान किया बल्कि विदेशी संस्कृति को भी भारतीय संस्कृति में विलय करने पर विवश कर दिया 17वीं शताब्दी से अंग्रेजों का अधिपत्य भारत में बढ़ता चला गया और एक बार पुनः भारतीय संस्कृति को बचाने के लिए कई महापुरुषों ने अपने जीवन की आहुतियां दीं। उन महापुरुषों में से पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर जी का नाम शीर्ष नामों में आता है जिन्होंने भारतीय रागदारी संगीत को बचाने एवं पल्लवित करने हेतु इतने कार्य किए कि कई मनीषी विद्वान मिलकर भी एक जीवन में उन कार्यों को पूर्ण ना कर पाएं। उन्होंने तत्कालीन स्थिति को भलीभांति जान कर रागदारी संगीत के प्रचार-प्रसार, संरक्षण एवं संवर्धन हेतु भक्त कवियों के काव्य को रागदारी संगीत से जोड़ने का कार्य किया जिससे ना केवल रागदारी संगीत जन जन तक पहुंचा बल्कि उसे सीखने समझने वालों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। साथ ही उन्होंने प्रसिद्ध भक्ति कृतियों के काव्य को भजन गायन के रूप में प्रस्तुत कर भारतीय संगीत की सीमाओं को और भी विस्तृत और विपुल बना दिया। जहां पहले हर कार्यक्रम ठुमरी, दादरा, गजल, आदि शृंगारिक गेय विधाओं से ओतप्रोत रहते थे और रागदारी संगीत भी राजाओं व आश्रयदाताओं की चाटुकारिता के शब्दों से भरे होते थे, उनका स्तर धीरे धीरे शृंगार से आध्यात्म की ओर प्रवाहमान हो गया। हालांकि भजन गायन परंपरा इससे पूर्व भी विद्यमान थी परंतु पंडित जी ने एक अनूठी ही शैली का निर्माण किया व पूरे भारतवर्ष में घूम-घूम कर भजन गायन की इस नवीन शैली की ऐसी अलख जगाई कि उनके नाम पर ही यह परंपरा प्रचारित व प्रसारित हो गई जिसे कहते हैं 'पलुस्कर भजन गायन परंपरा' या 'पलुस्कर भजन शैली'।

रागदारी संगीत के तत्वों से युक्त इस परंपरा का निर्वाहन पंडित जी व उनके शिष्यों व प्रशिष्यों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भली-भांति किया। पंडित ओमकारनाथ ठाकुर, पंडित नारायण राव व्यास, पंडित विनायक राव पटवर्धन, पंडित नारायण मोरेश्वर खरे, पंडित बंशीलाल छिब्बर (रामचरित मानस गायक) आदि अनेक शिष्यों ने या तो पंडित पलुस्कर जी द्वारा स्वरबद्ध भजनों को ही गाया या उसी परंपरा के अनुसार भजनों का निर्माण कर उनका मंच पर प्रदर्शन किया ।

वर्तमान में इस परम्परा के प्रमुख ध्वजवाहक के रूप में, व इस परम्परा को आगे वढ़ाने में केवल एक नाम 'पं.विधाधर व्यास' जी का ही सुनाई पड़ता है। पंडित विद्याधर व्यास संगीत शिरोमणी पंडित नारायण राव व्यास जी के सुयोग्य पुत्र व शिष्य हैं एवं वर्तमान में पलुस्कर भजन गायन परंपरा के अकेले संवाहक हैं। पंडित विद्याधर व्यास अपने हर कार्यक्रम में पलुस्कर भजन परंपरा के भजन अवश्य सुनाते हैं जिनमें अधिकतर वही भजन हैं जो पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी या उनके शिष्यों द्वारा स्वरबद्ध हैं। कुछ भजन ऐसे भी हैं जो छोटे ख्याल के समान गाये जाते हैं व आवश्यकता पड़ने पर उन्हें भजन गायन के समान भी गाया जा सकता है।

पंडित विद्याधर व्यास के मधुर व सुरीले कंठ से ये भजन और भी आध्यात्मिक व भक्ति प्रभाव छोड़ते हैं। रागदारी संगीत के प्रमुख अवयवों को प्रयोग करते हुए (जैसे बहलावा, पुकार, छोटी तान, सुर समन्वय आदि) भजन गायन करते समय वह शब्दों के उच्चारण, उनके अर्थ, राग की संकल्पना, भक्ति रस की व्युत्पत्ति आदि अनेक बातों का ख्याल रखते हैं। अधिकतर भजन मध्यम ग्राम से ही गाते हैं। मध्यमग्राम का यह अर्थ मध्यम को 'सा' यानि षड्ज मानकर गायन करना है। इस परंपरा में राग झिझोटी, पीलू, भैरवी, पहाड़ी, खमाज, हमीर आदि अनेकानेक रागों में भजन निबंद्ध हैं। आवश्यकता अनुसार व कार्यक्रम के प्रारूपानुसार वे भजन का चुनाव करते हैं यहां यह बताने की आवश्यकता है की पंडित विद्याधर व्यास जी नाट्यसंगीत के भी महारथी हैं व मंचीय प्रस्तुतीकरण के सभी गुण उनमें विद्यमान हैं।

पंडित जी का पारिवारिक जीवन आध्यात्मिक व सांगीतिक दृष्टिकोण से सुदृढ़ रहा है। आपके पिताजी एवं काका दोनों ही पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी के परम शिष्य थे। आपके पिताजी पंडित नारायण राव व्यास एवं पं. शंकर राव व्यास जी की जोड़ी संगीत कार्यकर्ता के लिए एक आदर्श जोड़ी थी। पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर जी के इन दोनों शिष्यों ने मिशनरी कार्यकर्ताओं की तरह आप भारतीय रागदारी संगीत व पलुस्कर भजन परंपरा की सम्पूर्ण विश्व में अलख जगाई। पं. नारायण राव व्यास द्वारा गाया गया 'राधे कृष्ण बोल मुख से' एच.एम.वी. का सर्वाधिक बिक्री वाला रिकॉर्ड रहा है। आपके चाचा पंडित शंकरराव व्यास जी को आधुनिक सदारंग की उपाधि प्रदान की गई। उनके द्वारा रचित कई बंदिशों को पं. विद्याधर व्यास बहुत ही चाव से गाते हैं। ऐसी सशक्त व शास्त्रीय परंपरा के संवाहक हैं। पंडित जी गायन में ग्वालियर की गायकी के सहज दर्शन होते हैं। विभिन्न संगीत संस्थाओं के आप शीर्षस्थ स्थानों पर रहे हैं। जहां आपने भारतीय रागदारी संगीत के साथ साथ भक्ति संगीत को भी संवर्धन किया। आपके प्रिय भजनों में अधिकतर परंपरागत भजन ही हैं जिन्हें पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर जी ने स्वरबद्ध किया था जैसे-जब जानकी नाथ सहाय करे, ठुमक चलत रामचंद्र, पायो जी मैंने राम रतन धन पायो, कहां के पथिक कहां, राम राम नाम, गुरु बिन कौन बतावे बाट इत्यादि। आप इस परंपरा की आने वाली पीढ़ी को भी निरंतर रूप से शिक्षा दे रहे हैं। आप से शिष्यत्व को प्राप्त करना स्वयं में गौरव का विषय है। आपका वरद् हस्त हम सब पर यूं ही बना रहे व हम सब इस परंपरा को बढ़ाने में अपना कुछ योगदान दे पायें। ई-वर से यही प्रार्थना है। आपके श्री चरणों में मेरा शत-शत प्रणाम।

पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर द्वारा स्वरबद्ध कुछ भक्ति पद जो पं. विद्याधर व्यास द्वारा प्रस्तुत किये जाते है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

1. पायो जी मैंने राम रतन धन पायो। (मीराबाई) राग मिश्र पहाड़ी, ताल-कहरवा।
2. ठुमक चलत राम चन्द्र, बाजत पैजनियां। (तुलसीदास) राग झिंझोटी, ताल-दादरा।
3. चलो मन गंगा जमुना तीर। (मीराबाई) राग पहाड़ी, ताल-कहरवा।
4. कहां के पथिक कहां कीन्हों है गभनवां। (तुलसीदास) राग झिंझोटी, ताल-कहरवा।
5. जब जानकीनाथ सहाय करें। (तुलसीदास) राग खमाज (मध्यम ग्राम) ताल कहरवा।
6. अंखियां हरिदर्शन की प्यासी। (मीराबाई) राग झिंझोटी, ताल-कहरवा।
7. लक्षमन धीरे चलों मैं हरी। (मीराबाई)
8. मनवा राम ना मरस पीजै। (मीराबाई)
9. मोरी लागी लटक गुरू चरनम की। (मीराबाई)
10. भजो वे भइया राम गोविन्द हरी। (कबीरदास)
11. मैंया मोरी मैं ना ही माखन खायो। (सूरदास राग तिलक कामोद)
12. पग घुंघरू बांध मीरा नाचे। (गायकः पं. ओंकारनाथ) मालकोस
13. राधे कृष्ण बोल मुख से। (गायकः पं. एन.आर. व्यास)
14. श्री राम चन्द्र कृपाल भजमन हरण भवभय दारूणं (तुलसीदास)
15. मैं गिरधर आगे नाचूंगी (मीराबाई)
16. माई री मैंने गोविन्द मोल (मीराबाई) (राग मांड)
17. गुरू बिन कौन बतावे बाट (राग हमीर)
18. साधो मन का मान त्यागो (राग मियां मल्हार)
19. राम नाम ध्याना (राग नंद)
20. अबकी टेक मारी। (पं. पटवर्धन जी)
21. ऊधों कर्मन की गति न्यारी
22. और कछु नही काम के, (राग दरबारी)
23. काहे रे मन खोजन लागे, (नानक, राग शंकरा)
24. घुंघट के पट खोल, (राग दरबारी)
25. ठाकुर तुम शरणाई आयो, (राग मांड)
26. वैष्णव जन तो तेने कहिये, (राग मांड)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुरुजी द्वारा निर्मित रचनाओं का विश्लेषण

गतिकृष्ण नायक

'वामांतुरूच्यते गेय धातुरित्पभिधीयते।
वाचं गेयं च कुरूते यः स वाग्गेयकारकः।।'

'संगीत रत्नाकर' के अनुसार वाणी अथवा काव्य को 'मातु' कहा जाता है और गेय अर्थात् स्वर-ताल आदि की योजना को 'धातु' कहा जाता है। वाग्गेयकार का शाब्दिक अर्थ-वाक् अर्थात् पद रचना और गेय अर्थात् स्वर रचना, दोनों का ज्ञान रखने वालों को वाग्गेयकार कहते हैं।

वर्तमान समय में ऐसे ही एक प्रातः स्मरणीय, यशस्वी व्यक्तित्व से स्वामी और उच्चकोटि के संगीतकार को संगीत जगत् 'पं. विद्याधर व्यास' जी के नाम से जानता है। पं. विद्याधर व्यास एक बहुमुखी प्रतिभा के धनी संगीतज्ञ हैं।

घर में सांगीतिक विरासत होने के कारण पं. जी की रूचि संगीत में होना स्वाभाविक है। आपने सांगीतिक शिक्षा विधिवत रूप से अपने पिता तथा गुरू पं. नारायण राव व्यास जी से ग्रहण की है जो स्वयं एक ख्याति लब्ध गायक थे एवं गायनाचार्य पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी के सुयोग्य शिष्यों में से थे। पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने संगीत जगत को बहुत गुणी कलाकार दिए हैं। पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के अनेक सुयोग्य शिष्य हुए जिन्होंने बंदिश निर्माण क्षेत्र में अप्रतिम कार्य किया। पं. जी स्वयं एक उच्च कोटि के रचनाकार थे, उनके शिष्यों में पं. ओंकारनाथ ठाकुर और पं. शंकरराव व्यास दो बहुत प्रशस्त रचनाकार हुए हैं। आगे चलकर इनके प्रशिष्यों में भी उच्च्व स्तर के कई रचनाकार हुए हैं।

पं. विद्याधर व्यास जी वर्तमान समय में ग्वालियर घराने के अग्रज कलाकारों में से हैं। पं. जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी है। वे एक कुशल संगीतज्ञ, गायक, वादक, अभिनेता एवं वाग्गेयकार भी हैं। उन्होंने समय-समय पर अनेक बंदिशों की रचना की है। कई रचनाएं ऐसी भी हैं जिनमें स्वर रचना व शब्द रचना दोनों ही पंडित जी की हैं। व्यास जी की बंदिशों के विषयों पर नजर डाली जाए तो स्पष्ट हो सकेगा कि उन्होंने भक्ति रस नायक-नायिका, शृंगार परक, ऋतु वर्णन आदि पारम्परिक विषयों के साहित्य को ही अपनी बंदिशों के लिए चुना है। मेरा सौभाग्य है कि इस लेख के लिए जब मैंने उनकी रचनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए उनका साक्षात्कार लिया, तो महसूस हुआ कि उनकी संगीत और काव्य के आपसी संबंध के बारे में धारणा अत्यन्त विलक्षण है। उनकी स्पष्ट राय है कि बंदिश, राग संगीत की पैनी दृष्टि रखने वाले संगीतकार के द्वारा ही रची होनी चाहिए।

यहां प्रस्तुत हैं इस साक्षात्कार के कुछ अंश-

प्र. गुरुजी जिस तरह से शब्दों का यानि साहित्य का महत्व ध्रूपद में है उतना ही महत्व ख्याल में भी है क्या?

उ. बंदिशों में हम जिस भाषा का प्रयोग करते हैं तो स्वाभाविक रूप से उसका महत्व तो रहता ही है, बाकि ये कलाकार के ऊपर निर्भर करता है कि वह किस तरह उसके महत्व को जानकर कम या ज्यादा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपयोग करते हैं। हमारा जो शास्त्रीय संगीत है उसका सही नाम रागदारी संगीत है। अब जब शास्त्रीय संगीत कहते हैं तो शास्त्र माने थ्योरी या टेक्नीक। असली नाम है-रागदारी, मतलब रागों की प्रधानता। जब हम ख्याल गाते हैं तो शब्द थोड़े बहुत इधर-उधर हो जाते हैं तो हम उसे दोबारा कह सकते हैं पर स्वरों का इधर-उधर नहीं किया जाना चाहिए। उस राग में दूसरे राग नहीं दिखना चाहिए। राग को सम्भालने के लिए कई बार शब्दों की अनदेखी की जाती है। कुछ घरानों में कलाकारों को तो उस शब्द का सही अर्थ तक नहीं पता होता। विशेषतः महाराष्ट्र में कई बार ऐसा होता है क्योंकि वहां लोगों को बृजभाषा इत्यादि का अधिक ज्ञान नहीं है।

प्र. बंदिश को आप कैसे देखते हैं?

उ. संगीत के मुख्य दो स्तम्भ हैं-स्वर और लय। जब स्वर और लय साथ में आते हैं और किसी कलाकृति में बंध जाते हैं, तो उसे बंदिश कहते है। राग भी एक बंदिश है और इसी बंदिश को संगीत कहते हैं जिसे हम गाते-बजाते हैं। बंदिश के प्रकारों से संगीत के प्रकार बनते हैं। जैसे-प्रबंध में अलग-अलग प्रकार हैं। ध्रूपद एक प्रकार हो गया और ख्याल एक प्रकार हो गया। इस तरह के प्रकार संगीत की विविध विधाओं के प्रकार कहलाते हैं। ख्याल के अंगभूत प्रकारों में तराना, चतुरंग, त्रिवट, टप्पा, तराना के अलावा अष्टपदी भी एक प्रकार है जिसके आठ पद होते हैं, पर वह कम लोकप्रिय है, यह क्षेत्रीय संगीत तक ही सीमित रहा। ये ज्यादातर ओडिसा में गाया-बजाया जाता है।

प्र. बंदिश बनाने की प्रेरणा आपको कहां से मिली?

उ. मेरे बड़े काका पं. शंकर राव व्यास और पं. कुमार गंधर्व जी से ही मुझे नवीन बंदिशों के निर्माण की प्रेरणा मिली। मेरे काका ने अनेक रागों में बंदिश निर्माण किया जिनका संकलन व्यास कृति के चार भागों में किया गया है। मेरे पिताजी पं. नारायण राव व्यास ने काका द्वारा रचित बंदिशों को गाकर जग प्रसिद्ध किया। काका को 'आधुनिक सदारंग' का खिताब दिया गया था।

प्र. राग के भाव के हिसाब से भी शब्दों का ख्याल रखना चाहिए?

उ. जब बंदिश कहते हैं, मतलब बंधी हुई, तो ये बंधन कौन-कौन सा है? सबसे पहले राग के स्वरों का बंधन, ताल का बंधन और जब हम गाते हैं तो उसकी भाषा और शब्दों का बंधन होता है। बंदिश निर्माण के समय सबसे पहले रागों की प्रधानता का बंधन निभाया जाता है। राग, ताल, लय उसके बाद शब्द और उसकी भाषा इस तरह रहता है। यदि राग भाव के साथ उसकी लय एवं शब्द योजना इनका संबंध बिठाकर रचना की जाए, तो वह रचना अवश्य ही उत्तम होगी।

प्र. जैसे पं. शंकरराव व्यास जी की बहुत सी रचना राधाकृष्ण पर आधारित है तो आप भी कुछ वैसा सोचते हैं?

उ. नहीं ऐसा कुछ निश्चित नहीं है मेरे साथ, और मेरे बंदिश बनाने में इस तरह की नियमितता भी नहीं है। एक आज बना लिया एक चार महीने बाद, जैसे जिस तरह सूझा जब सूझा बना लिया। एक बार मेरा एक प्रवास था 1994-95 में अमेरिका का। तो मैं मॉरीशस गया था। वहां पर एक रियूनियन आईलैंड है, वहां दक्षिण भारत के काफी लोग रहते हैं। वहां फ्रेंच भाषा बोली जाती है, पर वहां कामकाजी और सामान्य भाषा में तमिल बोली जाती है। वहां दक्षिण भारतीय संस्कृति की प्रधानता है। उस जगह पर मेरा कार्यक्रम और वर्कशॉप हुआ तो, वहां कर्नाटक संगीत चलता है, तो मैंने सोचा भूपाली में कुछ सिखाते हैं, भूपाली व मोहनम् उनके करीब-करीब स्वर है।

जब ख्याल गाया तो वह उत्तर भारतीय भाषा में था, तो मैंने सोचा की तराना गाते हैं ताकि वे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आनन्द ले सके, तो मैंने तराना बनाया क्योंकि तराना में भाषा का अर्थ नहीं होता। तो इस तरह बड़ा आकर्षक तराना बन गया। बनने के बाद ही मुझे लगा कि हां अच्छा बना है। ऐसा नहीं की हमेशा मुझे अपनी बनाई बंदिश अच्छी लगे, बंदिश बनने के बाद उसे देखता हूं कि ये इतनी अच्छी नहीं बनी या कभी-कभी ऐसा लगता है कि अच्छी बन गई।

प्र. गुरुजी आपके द्वारा रचित कुछ बंदिशें सुना सकते है?

उ. हां जरूर!! एक बंदिश मैंने बनाई है राग मधमाद सारंग में। द्रुत एकताल की वंदिश है-

'सब गुनिजन गावो बजावो
गुन की चर्चा करो, आनंद बधाओ'

यह बंदिश मैंने जयपुर में बनाई थी। इस बंदिश की प्रेरणा मुझे कुमार गंधर्व जी की बंदिशों से मिली। सभी लोग परंपरागत बंदिश गाते आ रहे हैं तो मैंने सोचा कि कुछ अलग हो इसमें, तो ये बंदिश बन गई। एक बार ये बंदिश कुमार गंधर्व जी को सुनाई तो वे बोले-वाह! अच्छी बनी है।

एक बंदिश मैंने बनाई थी गुणक्ली में। गुनक्ली में एक पारम्परिक रचना 'बाजे डमरू हर कर..... .....' धमार के रूप में लोग इसे गाते है। ये बहुत पुरानी बंदिश है। यह शिव स्तुति है। इसे रूपक ताल में भी गाते हैं। तो उसका छोटा ख्याल नहीं मिल रहा था। तो मैंने सोचा कि इतनी अच्छी शिव स्तुति है तो छोटा ख्याल गजानन (गणेश जी) पर बनाया जाए ताकि ये बड़े ख्याल से मिलती-जुलती हो। तो जब बनाने का सोचा तो बहुत अच्छी बंदिश बनी।

स्थाई - वंदे श्री वर गणेश, वक्रतुण्ड एक दन्त
लम्बोदर पीत वस्त्र शुभ कार्ये प्रथम नमो।
अंतरा - मोदक प्रिय पार्वति सुत, गजमुख मूषक वाहन।
विघ्नहार मंगल दायक, तुम ही भक्तन को।।

यह बंदिश द्रुत एकताल में है।

प्र. गुरुजी, अब तक आपने कितनी बंदिशों की रचना की है?

उ. आज तक मैंने कोई 30-40 बंदिशों की रचना की होगी। मैं कोई बंदिशकार नहीं हूं, ना ही मैं स्वयं को वाग्गेयकार मानता हूं। जब किसी से प्रेरणा मिलती है, कुछ विचार मन में आते हैं, उस समय बंदिश बनाता हूं, या कहूं कि बंदिश बन जाती है। तो इस तरह समय-समय पर बंदिशें बनती है। जैसे एक बार सन् 1990 के आसपास मुम्बई युनिवर्सिटी में बच्चों को राग गोरख कल्याण सिखा रहा था, उसमें बहुत ही प्रसिद्ध बड़े ख्याल की बंदिश है-'धन धन भाग गोरी तोरे', तो इसे सिखाने के बाद जो जोड़ छोटा ख्याल का मुझे मिला वो मुझे इतना आकर्षक नहीं लगा, तो मैंने सोचा कि ये इतना अच्छा और मधुर राग है तो क्यूं ना हम ही इसका जोड़ा बनाते हैं, तो जब बनाने के दिशा में सोचने लगा तो एक-एक करके शब्द मिल गये, शब्दों के साथ स्वर भी आ गए।

तो ये भी स्वतः स्फूर्त बात होती है, सोचकर बैठना कि मुझे बंदिश बनाना है, ये भी एक तरीका है, पर मेरे लिए वे तरीका काम नहीं करता, तो जब कोई प्रेरणा मिलती है तो मेरे सामने शब्द आते हैं। कभी-कभी स्वर पहले आते हैं और बाद में वो स्वर शब्दों को ले आते हैं।

वे जो बंदिश है-गोरख कल्याण की 'पायलिया छुम छनन मोरी बाजे' वह बंदिश इस प्रकार बनी है।

प्र. बंदिश के अलावा कभी तिरवट, चतुरंग इत्यादि भी बनाया है? एक बार मैंने आपसे सीखने के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दौरान तोड़ी राग में एक तिरवट सुना था उसमें कुछ प्रयोग किए थे?

उ. वह मूलरूप से पं. विष्णु दिगम्बर पुलस्कर की रचना है। मैंने इसके अंतरे में थोड़ा 'वैरिएशन' किया था। वैसे मैंने ऑन द स्पॉट तराने भी बनाए हैं। 15 साल पहले, मेरा रेडियो का संगीत सम्मेलन का कार्यक्रम था, उस समय मैं लखनऊ में था और प्रोग्राम जालंधर में था। उस दिन देश के राष्ट्रपति का निधन हो गया, तो इस वजह से जिस सभागार में प्रोग्राम होना था वह रद्द हो कर स्टूडियो रिकार्डिंग हुई तो उस समय में स्वतः स्फूर्त एक तराना बन गया और उसी समय मैंने उसे गा दिया, उसकी काफी तारीफ भी हुई। कई बार होता है कि बंदिश, तराने आदि बनाकर मैं भूल जाता हूं व्यस्तता के कारण लिख नहीं पाता हूं इस तरह कई नवीन रचनाएं विस्मृत भी हो गई।

प्र. गुरूजी आपके विचार में बंदिश को लिपिबद्ध करने का क्या महत्व है?

उ. संगीत वह ललित कला है, जिसमें स्वर-ताल के माध्यम से संगीतज्ञ अपने मनोगत भावों को व्यक्त करता है। मानव की इस इच्छा के फलस्वरूप कि वह अनुभव से प्राप्त ज्ञान को सुरक्षित रख सके, इसलिए संगीत क्षेत्र में भी विद्वानों ने संगीतोपयोगी ज्ञान अर्जित किया तथा उसको सुरक्षित रखने का संभव प्रयास किया। इतिहास साक्षी है कि विभिन्न काल खंडों में तत्कालीन व्यवस्थानुसार संगीत को सुरक्षित रखने के प्रचुर प्रयास होते रहे हैं। किसी भी सांगीतिक रचना को लिखित रूप में संग्रहित करने के लिए स्वरलिपि एक महत्वपूर्ण माध्यम है। जिस प्रकार किसी भाषा को सीखने के लिए भाषा लिपि आवश्यक है उसी प्रकार संगीत को सीखने के लिए स्वरलिपि आवश्यक है। यद्यपि स्वरलिपि ध्येय तो नहीं तथापि ध्येय प्राप्ति का एक साधन अवश्य है।

संदर्भ सूची :

1. शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर, संपादक-सुभद्रा चौधरी

2. संगीत विशारद, वसंत, संपादक-डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग

3. ग्वालियर की संगीत परंपरा, डॉ. अरूण कुमार बांगरे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पं विद्याधर व्यास द्वारा रचित रचनाएं

राग -गोरख कल्याण, मध्यलय तीनताल

स्थाई-पायलया छुम छननन मोरी बाजे

कैसे जाऊं पी को मलन मधुरात

सखयां जगात देखत मोरी मात।।

अंतरा- मधुरात चांदनी चमकत

जियरा उन बिन तरपत

कैसे घर जाऊँ मौंरा शृंगार मुरझात।।

स्थाई

								–	–	–	स	रे	म	पध	सांनि
								ऽ	ऽ	ऽ	पा	य	लि	याऽ	ऽऽ
×				2				0				3			
धऽ	–	म	रे	म	रे	नि॒	ध	स	–	सा	ध़	सा	रे	म	म
छुम	ऽ	छ	न	न	न	मो	श्री	वा	ऽ	जे	कै	से	जा	ऽ	ऊँ
×				2				0				3			
ध	–	सां	रें	सानि॒	सानि	ध	ध	सं	–	सां	ध	सां	रेंमं	रेंमं	रेंसां
पी	–	को	मि	ल	न	म	धु	श्रा	ऽ	त	स	खि	याऽ	ऽऽ	ऽऽ
×				2				0				3			
नि॒	–	ध	नि॒	ध	म	धनि॒	रेंसां	नि॒ध	मम	रेसा	सा	–	–	–	–
गा	ऽ	त	दे	ख	त	मोऽ	रीऽ	माऽ	ऽऽ	तऽ	पा	य	लि	याऽ	ऽ
×				2				0				3			

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंतरा

											म	म	ध	सां	ध
											म	धु	रा	ऽ	त
×				2				0				3			
सां	–	–	रें	नि	नि	ध	ध	सं	–	सां	ध	सां	रेंमं	मं	रेंसा
चा	ऽ	ऽ	न्द	नी	ऽ	च	म	क	ऽ	त	जि	य	राऽ	ऽ	ऊऽ
×				2				0				3			
नि	–	ध	नि	नि	धप	म	रे	म	–	म	म	रे	म	ध	नि
न	ऽ	ऽ	बि	ऽ	नऽ	त	र	प	ऽ	त	कै	से	घ	श्र	जा
×				2				0				3			
ध	सं	नि	रेंसा	नि	ध	मम	रेंसां	निनि	धम	रे	सा	–	–	–	–
ऊँ	मो	रा	शृं	गा	र	मुऽ	रऽ	झाऽ	ऽऽ	त	पा	य	लि	या	ऽ
×				2				0				3			

राग-गोरख कल्याण

तराना-द्रुत तीनताल

स्थाई- तनन दिर दिर तनोम, ता ऽ ना देरेना।

तदरे दानी रिदानी दानी, तदरे दानी।।

अंतरा-रिदाना तुद्रे तदरे तन दिम तना

तदरे तारे दानी तारे दानी तारे दानी

दानी रिदानी दानी तदरे दानी।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थाई

											नि	ध	म	रे–	म–
											त	न	न	दिर	दिर
x				2				0				3			
नि	–	ध	म	रेमं	रेसा	नि़	ध़	सा	–	–	सा	रे	रे	नि़	ध़
त	ऽ	नोम	ता	ऽऽ	नाऽ	छे	श्रे	ना	ऽ	ऽ	त	दा	रे	दा	नी
x				2				0				3			
नि़	श्रे	म	नि	ध	सां	रें	श्रें	नि	–	ध	नि	–	–	–	–
रि	छा	नि	दा	नी	त	छ	श्रे	छा	ऽ	नी	त	न	न	दिर	दिर
x				2				0				3			

अंतरा

											रे	सां	सां	नि	ध
											रि	दा	ना	तुं	द्रे
x				2				0				3			
म	ध	नि	रें	सां	निऽ	–	ध	सं	–	–	ध	सां	रें	मंपं	मंमं
त	छ	रे	त	न	दिम	ऽ	र	ना	ऽ	ऽ	त	द	रे	ताऽ	रेऽ
x				2				0				3			
रें	–	सां	धनि	संनि	निध	–	म	रेम	पम	रे	सा	ध़सा	नि़नि़	(सा)	नि़
दा	ऽ	नी	तऽ	रेऽ	दाऽ	ऽ	ने	ताऽ	रेऽ	दा	ऽ	नीऽ	ऽऽ	दा	नी
x				2				0				3			
नि	रे	म	नि	ध	सां	रें	श्रें	नि	–	ध	नि	–	–	–	–
रि	दा	नि	दा	नी	त	द	श्रे	छा	ऽ	नी	त	न	न	दिर	दिर
x				2				0				3			

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग-हंसध्वनि,ताल-रूपक

स्थाई-मां शारदे विद्या दानी वीणा पाण मयूरासनि

शुभ्र वस्त्रावृता कुमुदिनी।।

अंतरा-तम अहंकार हारिणी तू, ज्ञान दीपं प्रकाशनी तू

नत मष्तक होत वद्या याचि आशीर्वच दानी।।

स्थाई

ग	–	–	$^{\text{प}}$रे	–	रे	सा
मॉं	S	S	शा	S	श्र	दे
0			2		3	
$^{\text{ग}}$प	–	रे	$^{\text{प}}$रे	ग	गरे	सारे
वि	S	द्या	छा	S	नीS	SS
0			2		3	
ग	$^{\text{प}}$रे	ग	प	–	प	$^{\text{प}}$ग
वी	S	णा	पा	S	णि	S
0			2		3	
प	<u>नि</u>	रें	$^{\text{ग}}$प	ग	$^{\text{प}}$ग	रे
म	यू	S	श्रा	S	स	नि
0			2		3	
$^{\text{प}}$ग	–	प	<u>नि</u>	–	रें	–
शु	S	भ्र	व	S	स्त्रा	S
0			2		3	
गरें	सां	–	$^{\text{ग}}$प–	गप	गरे	सारे
वृS	ता	S	कुS	मुS	दिS	नीS
0			2		3	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंतरा

पग	प	प	सां	–	सां	–
त	म	अ	ळं	ऽ	का	ऽ
0			2		3	
सां	सां	–	सां	–	नि	सां
र	ळा	ऽ	श्री	ऽ	णी	तू
0			2		3	
प	–	नि	श्रें	–	निरें	निरें
ज्ञा	ऽ	न	ध्व	ऽ	दीऽ	पऽ
0			2		3	
गरें	सां	–	गप–	गप	ग	रे
प्रऽ	वा	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	शि	नी
0			2		3	
प	नि	रेंनि	नि	प	प	ग
न	त	ऽऽ	म	ऽ	स्त	क
0			2		3	
ग	–	पग	गरे	गरे	ग	रेसा
हो	ऽ	त	विऽ	ऽऽ	दया	ऽऽ
0			2		3	
ग	प	प	नि	–	रें	–
या	ऽ	चि	टा	ऽ	शि	ऽ
0			2		3	
गरें	सां	–	गप–	गप	गरे	सारे
वंऽ	च	ऽ	दाऽ	ऽऽ	नीऽ	ऽऽ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुरुगुन लिखा न जाय...

शिवजी पांडेय 'शिव'

संत महाकवि कबीरदास का एक दोहा है कि : 'सब धरती कागद करूं, लेखनि सब बनराय, सात समुद्र की मसि करूं, गुरुगुन लिखा न जाय' अर्थात यदि सम्पूर्ण धरती को कागज़ बना लूं, संसारभर के वृक्षों की कलम बना लूं और सातों समुद्रों की स्याही बना लूं तब भी गुरु की महिमा का बखान संभव नहीं है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि गुरु के गुणों का बखान करने में लेखन के मापदंड की यह पराकाष्ठा प्राप्त करना मात्र कठिन ही नहीं अपितु असंभव भी है। परंतु शायद ही कोई शिष्य ऐसा होगा जो अपने गुरु के गुणों का बखान करने का अवसर पाने पर स्वयं को पीछे या शान्त रख सके।

जीवन में कुछ अवसर या मुलाकातें ऐसी होती हैं जिनका असर आगामी जीवन में निर्णायक और परिणामदायक सिद्ध होता है। आदरणीय गुरुजी संगीताचार्य पंडित विद्याधरजी व्यास से मेरी पहली मुलाकात इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (अब प्रयागराज) के संगीत विभाग में रिफ्रेशर - कोर्स के दौरान साल 2003 में हुई थी। साल 2010 से तो मैं गुरुजी के नियमित संपर्क और सानिध्य में हूं जिसे मैं अपना परमसौभाग्य मानता हूं। इस दौरान गुरुजी से प्राप्त स्नेह और संरक्षण हमारे लिए अनिर्वचनीय है। फिर भी मैंने गुरुजी के साथ रहकर अब तक जो जाना - समझा और अनुभव किया है उसे मैं बिन्दुवार प्रस्तुत करना चाह रहा हूं :-

एक आदर्श गुरु और शिक्षक - व्यास गुरुजी एक आदर्श संगीत गुरु और शिक्षक हैं। उनका यह गुण सिर्फ उनसे संगीत शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियों से ही पता नहीं चलता, बल्कि उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व स्वयं इसका उदाहरण है।

एक नेकदिल और साफ नीयत वाले संगीतज्ञ - व्यास गुरुजी का मन गंगोत्री के गंगाजल की तरह बिल्कुल साफ है। संगीत, संगीत विद्यार्थियों और संगीतज्ञों के विकास के प्रति उनका चिंतन बिल्कुल निष्पक्ष और निर्मल है।

संगीत के प्रति पूर्ण समर्पण - चाहे व्यास संगीत गुरुकुल के माध्यम से हो, चाहे व्यास संगीत विद्यालय से हो, चाहे संगीत कार्यशालाओं के माध्यम से हो, चाहे संगीत लेखों-व्याख्यानों के माध्यम से हो और चाहे विभिन्न संगीत संस्थाओं व संगीतज्ञों को सम्मानित करने के माध्यम से हो, गुरुजी का संगीत समर्पण अनुकरणीय एवं अभिनन्दनीय है।

व्यापक सोच और विराट व्यक्तित्व के धनी संगीतज्ञ - व्यास गुरुजी की सोच बहुत व्यापक है। अपने व्यापक ज्ञान की तरह ही वह कभी भी संकीर्ण दायरे में नहीं सोचते। उनका चिंतन भी व्यापकता से पूर्ण होता है। इन गुणों का समुच्चय ही गुरुजी के व्यक्तित्व को विराट बनाता है। कई बार मेरे अनेक वरिष्ठ मित्रों ने गुरुजी के व्यक्तित्व वैभव की प्रशंसा हमसे की है जिसे सुनकर निश्चित ही अच्छा लगता है और गौरव - बोध होता है।

सम्पन्न, अनुशासित और स्वाभिमानी संगीतज्ञ - व्यास गुरूजी एक ऐसे संगीतज्ञ हैं जिन्हें कोई धन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का लोभ नहीं दिखा सकता है। ईश्वर ने गुरुजी को ज्ञान, धन, रूप, यश व परिवार सभी से सम्पन्न बनाया है। व्यास गुरुजी अपने अकादमिक कैरियर से लेकर संगीत गुरुकुल तक एक अनुशासनप्रिय गुरु हैं। कोई उनका कितना भी प्रिय हो, उन्हें अनुशासनहीनता बर्दाश्त नहीं है। उनका स्पष्ट मत है कि संगीतज्ञ के लिए अनुशासित होना अति आवश्यक है। संगीताचार्य पंडित विद्याधर व्यास गुरूजी अत्यंत स्वाभिमानी संगीतज्ञ हैं। कार्यक्रम-पुरस्कार जैसी चीजों को भी उनके स्वाभिमान का सम्मान करते हुए उन तक पहुंचना होता है। आज के समय में विशेषकर संगीत या कला के क्षेत्र में चाटुकारितारहित ऐसा स्वाभिमानी व्यक्तित्व निश्चितरूप से स्तुत्य है।

कुशल एवं निर्भीक प्रशासक - व्यास गुरूजी एक कुशल प्रशासक हैं। गवर्मेंट म्यूजिक कालेज, जयपुर, संगीत विभाग - मुंबई विद्यापीठ, मुंबई, भातखंडे संगीत विश्वविद्यालय, लखनऊ, आईटीसी संगीत रिसर्च अकादमी, कोलकाता, चेंबूर फाइन आर्ट्स, मुंबई और व्यास संगीत विद्यालय, मुंबई गुरुजी के कुशल एवं निर्भीक प्रशासनिक क्षमता के जीते - जागते उदाहरण हैं। गुरुजी को अपने इन्हीं गुणों के द्वारा कुछ सुविधाभोगी एवं अनाधिकार चेष्टा - सम्पन्न संगीतज्ञों की नाराजगी भी झेलनी पड़ी है। लेकिन संगीत और संस्थान के हित में गुरुजी ने कभी भी इसकी परवाह नहीं की।

सहयोगी प्रकृति के संगीतज्ञ - व्यास गुरूजी संगीत से जुड़े किसी कार्य में अनावश्यक एवं दिखावटी शर्तें लादने के सख्त खिलाफ हैं। गुरूजी आयोजकों और संगीतज्ञों सभी की व्यवहारिक कठिनाई समझते हैं और सहयोगात्मक रवैया रखते हैं।

संबंधों और चीजों की कद्र करने वाले संगीतज्ञ-गुरूजी संबंधों और चीजों की इज्जत करने वाले व्यक्ति हैं। संबंधों को निभाना और सहेजना उनसे सीखा जा सकता है। अक्सर हम सम्मान में मिले पुष्पाहार-गुलदस्ते व चीजें प्राप्त होने पर वहीं छोड़ देते हैं या भूल जाते हैं। लेकिन व्यास गुरुजी सम्मान में मिली हुई प्रत्येक चीज का आदर करते हैं। जो गुरुजी के प्रति लोगों के मन में आदर को और बढ़ाता है।

शिष्य की ठीक-ठीक योग्यता जाननेवाले गुरु - व्यास गुरुजी शिष्य की ठीक-ठीक योग्यता जानते हैं। संगीत में शिष्य का सबल और निर्बल पक्ष जानकर उनके सिखाने या तालीम देने का तरीका अनूठा है। उनके पास शिष्य की क्षमता , योग्यता और रुचि को समझकर सिखाने की शैली बेहद अनूठी है जो शायद विरले ही किसी के पास होगी। गुरुजी किसी एक ही ढंग से नहीं, बल्कि अलग-अलग शिष्यों को अलग-अलग ढंग से सिखाते हैं जो अपने आप में विशिष्ट है। यही वजह है कि उनसे लाइट (सुगम/भाव), क्लासिकल (शास्त्रीय) और लोकसंगीत जैसी किसी भी विधा में रुचि रखने वाला विद्यार्थी आसानी से संगीत सीखता है ।

मौलिक और चिंतनशील गायक और वक्ता - व्यास गुरुजी एक मौलिक और चिंतनशील शास्त्रीय गायक और वक्ता हैं। गुरुजी के साथ रहना, उन्हें सुनना और उनसे बात करना हर समय कुछ न कुछ सिखाता है। गुरुजी की गायकी और उनकी वक्तृत्व शैली मौलिकता और चिंतनशीलता का अद्भुत संगम है जिसमें 'डुबकी' लगाने का अवसर पाने वाले लोग भाग्यशाली हैं।

अपने शिष्यों के प्रति मात्र और मात्र गुरु की दृष्टि - शास्त्रों में लिखा है कि सच्चा गुरु वही है जो शिष्य का उत्कर्ष ही चाहे। इस मापदंड पर मैं पूर्ण विश्वास के साथ कह सकता हूं कि व्यास गुरुजी शिष्यों के प्रति गुरु की दृष्टि रखते हैं। शिष्यों के लिए उनकी दृष्टि से स्नेह और आशीर्वाद का झरना प्रतिक्षण झरता रहता है, यह मेरा अनुभव है।

शिष्यों के संरक्षक - शायद ही कोई गुरु ऐसे होंगे जो शिष्यों को पूर्ण संरक्षण प्रदान करने की नीयत और क्षमता रखते होंगे। शिष्य के उत्कर्ष में ही अपना उत्कर्ष ढूंढते हैं। कलियुग की इस आपाधापी वाली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मतलबी दुनिया में हमारे लिए ऐसे गुरु की प्राप्ति भगवान की प्राप्ति से कम नहीं है ।

परिवारवाद की मानसिकता से मुक्त संगीतज्ञ – जो संगीत के प्रति समर्पित होगा और जो संगीत में अच्छा करेगा वही शिष्य उनका परिवार है। व्यास गुरुजी के लिए वंशावली देखकर संगीत सिखाने की बात ही बेमानी है। उनका ज्ञान तो बहती निर्मल गंगा के समान है जिसमें डुबकी लगाने वाले को उसकी श्रद्धा के अनुसार फल मिलना तय है।

ग्वालियर घराने की पलुस्कर संगीत परंपरा के जीवंत स्तंभ – गुरुजी ग्वालियर घराने की पलुस्कर संगीत परंपरा के जीवन स्तंभ है। उनका अपनी परंपरा विषयक संगीत ज्ञान और संगीत चिंतन एक अमूल्य धरोहर है जिसे प्राप्त करने के लिए हम शिष्यों में से ही किसी को पात्रता विकसित करनी पड़ेगी।

अभिनय और संगीत के संगम व्यक्तित्व-गुरुजी सामवेदीय परंपरा के प्रवर्तक हैं जिसमें पाठ्यगीत, अभिनय-संगीत सराबोर है। पूरे देश में व्यास गुरुजी जैसे शायद ही कोई संगीतज्ञ होंगे जो अभिनय और गायन की अनूठी दक्षता रखते होंगे। गुरुजी अभिनीत मराठी का मशहूर नाटक 'काट्यार काळजात घुसली' इसका सबसे बड़ा उदाहरण है जिसमें सन 1970 से 1973 तक व्यास गुरुजी नायक सदाशिव की भूमिका में दो सौ ऊपर शो किए। अभी कुछ साल पहले ही इस नाटक पर आधारित इसी नाम से एक फ़िल्म भी रिलीज हुई थी जिसे थिएटर में गुरुजी के साथ देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था।

यथा नामः तथा गुण – गुरुजी का जैसा नाम है, वैसा ही उनका व्यक्तित्व है । अपने नाम के अनुसार ही वह संगीत विद्या के सागर हैं। जिनके सानिध्य में आनेवाले को ज्ञान का मोती मिलना तय है।

गुरुगुण लिखना संभव नहीं है। गुरूचरण में मात्र वंदना करने की हमारी योग्यता है।

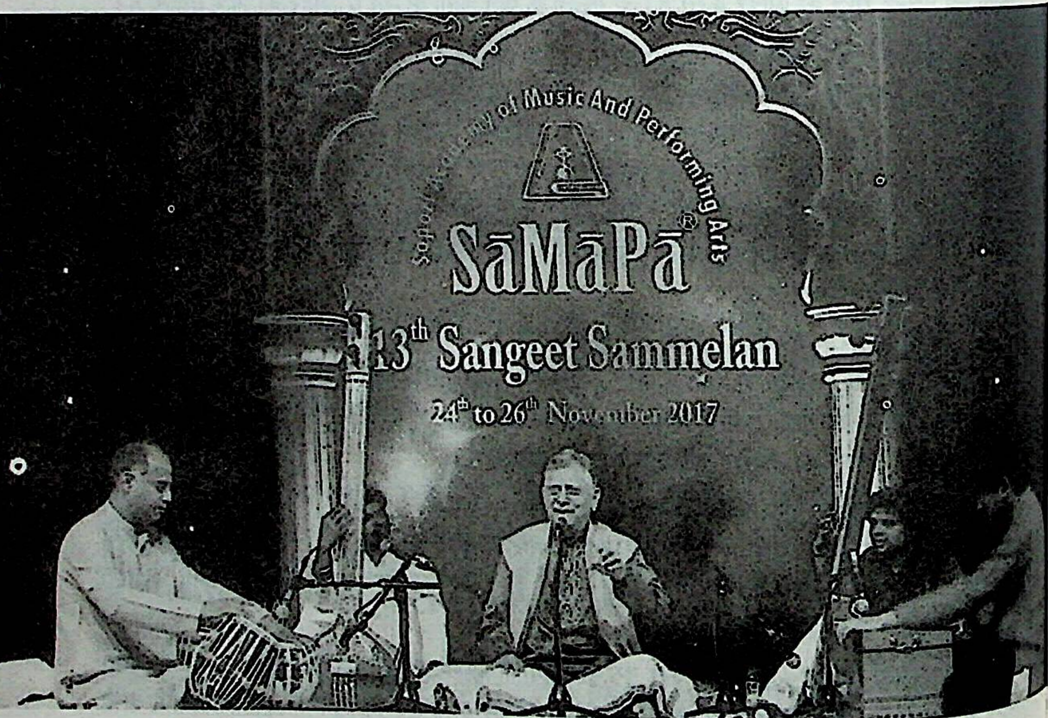

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्थागत संगीत शिक्षण परंपरा

भारत भूषण

संस्थागत संगीत शिक्षण प्रणाली की शुरूआत के प्रभाव 19वीं शताब्दी में प्रारंभ हो गए थे। अंग्रेजी शासन प्रणाली की स्थापना के साथ ही संपूर्ण शिक्षा-प्रणाली का पाश्चात्यीकरण प्रारम्भ हुआ। मानविकीय एवं विज्ञान के साथ-साथ ललित कलाओं एवं संगीत की शिक्षा भी गुरुकुल प्रणाली के स्थान पर संस्थाओं या विद्यालयों में सामूहिक रीति से प्रारम्भ हुई। जनसामान्य से अधिकतम प्रचार-प्रसार, शिक्षण में नियमबद्धता एवं स्तरीकरण के उद्देश्य से संगीत विषय की संस्थागत सामूहिक शिक्षण विधि अपनाई जाना युग की आवश्यकता थी। अतः केवल व्यक्तिनिष्ठ साधना और वर्ग-विशेष के मनोरंजन का साधन मात्र बनने के बजाय संगीत को सर्वसाधारण व्यक्ति की सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का एक अभिन्न अंग बनाकर जन समुदाय को संगीत शिक्षा सुलभ कराई जाए, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पांच मई सन् 1901 ई. को लाहौर एवं सन् 1908 में मुम्बई में पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने गांधर्व महाविद्यालय की स्थापना की।

संगीत शिक्षा को सामाजिक संरक्षण प्रदान करने की दृष्टि से 'गांधर्व महाविद्यालय' समाज की धनराशि पर आश्रित था। स्वयं संगीत कार्यक्रम आयोजित करके जो धन जनता से प्राप्त होता था उसे ही पुनः विद्यालय स्तर पर खर्च कर दिया जाता था क्योंकि पंडित विष्णु दिगम्बर का उद्देश्य धन अर्जित करना नहीं अपितु संगीत विद्या को अन्य विधाओं के समान समाज में एक प्रतिष्ठित स्थान दिलवाना था जिसके लिए उन्होंने निरन्तर कार्य किया।

पंडित जी के इन्हीं आदर्शों को मार्गदर्शक बना कर उनके शिष्यों-प्रशिष्यों ने भी इसी ध्येय से कार्य करते हुए एक के बाद एक विद्यालयों की स्थापना की। जिसके फलस्वरूप संगीत के संस्थागत शिक्षण का प्रचलन बढ़ा तथा धीरे-धीरे वह सम्पूर्ण देश में व्याप्त हो गया। इस शिक्षण पद्धति के लोकप्रिय होने का मुख्य कारण इसकी सर्वजन सुलभता ही है। गुरु-शिष्य परम्परा में जिस संगीत को लोग अत्यधिक कठिनाईयों को सहन करने के उपरान्त भी ठीक से नहीं सीख पाते थे, उसे वे संस्थाओं में सहज ही प्राप्त करने लगे। संगीत के संस्थागत शिक्षण के प्रचार में आने के समय से आज तक असंख्य विद्यार्थियों ने अपनी-अपनी रूचि एवं क्षमता के अनुसार संगीत शिक्षा प्राप्त कर इस विषय के प्रति समाज में एक जागरूकता एवं आदर उत्पन्न किया। वर्तमान में संगीत से सम्बन्धित विभिन्न क्षेत्रों जैसे - शिक्षण, प्रदर्शन, लेखन, समालोचन, प्रशासन आदि सभी में संगीत संस्थाओं से शिक्षण प्राप्त कर अधिकांश विद्यार्थी ही उत्तरदायित्वों का सफलतापूर्वक वहन कर रहे हैं। संगीत शिक्षण का एक निर्धारित क्रम अपनाने से इसमें व्याप्त अनियमितता तथा मनमौजीपन पर अंकुश लगा। संस्थागत शिक्षण का यह प्रयोजन विगत् वर्षों में काफी हद तक सिद्ध भी हुआ है। संगीत के संस्थागत शिक्षण की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह भी है कि इसके अन्तर्गत संगीत शिक्षण की वैज्ञानिक पद्धतियों का विकास हुआ तथा संगीत के क्रियात्मक पक्ष के साथ शास्त्र पक्ष का भी सामन्जस्य स्थापित करने के प्रयत्न किये जाने लगे। क्योंकि मुस्लिम काल से ही क्रियात्मक और शास्त्र पक्ष का संबंध टूटता चला जा रहा था। संगीत के संस्थागत शिक्षण में उपेक्षित शास्त्र पक्ष के महत्व को समझा गया तथा उसे पाठ्यक्रम में एक निश्चित स्थान प्रदान किया गया जिसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिणामस्वरूप संगीत में शोधकार्य की प्रवृत्ति को भी स्थान प्रदान किया गया। जिसके परिणामस्वरूप संगीत में शोधकार्य की प्रवृत्ति बड़ी तथा इसके वैज्ञानिक पक्ष का भी अध्ययन किया जाने लगा। वर्तमान समय में संगीत के शोध क्षेत्र में जो भी जागरूकता देखी जा रही है, वह संगीत के संस्थागत शिक्षण के प्रचार के ही परिणाम है।

पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर द्वारा स्थापित गांधर्व महाविद्यालय के बाद उनके शिष्यों एवं प्रशिष्यों ने पंडित जी के उद्देश्य को मार्गदर्शक बनाया तथा अलग-अलग जगहों पर जाकर विद्यालयों की स्थापना की। इन संस्थाओं के प्रारम्भिक दशकों में संस्थापकों एवं संस्था में कार्यरत शिक्षकों के अदम्य उत्साह, समर्पण एवं निष्ठा के फलस्वरूप तथा इन संस्थाओं में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों की सीमित संख्या एवं उनमें प्रतिभा तथा लगन के कारण बहुत अच्छा कार्य हुआ। परन्तु अगर हम वर्तमान में इन संस्थाओं की बात करें तो इनमें हमें उपरोक्त उपलब्धियों के साथ काफी मात्रा में कमियां भी मिलती हैं।

इसी श्रृंखला में पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के मार्ग-दर्शक तत्वों को ध्यान में रखते हुए उनके कई शिष्यों एवं प्रशिष्यों ने विद्यालय खोले। वर्तमान में इन संस्थाओं की शिक्षण प्रणाली व्यवस्था पर प्रस्तुत है संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार प्राप्त एवं ग्वालियर घराने के वरिष्ठ कलाकार पंडित विद्याधर व्यास जी के साक्षात्कार के कुछ अंशः

प्र. पंडित शंकरराव व्यास एवं पंडित नारायणराव व्यास द्वारा व्यास संगीत विद्यालय की स्थापना कब और कैसे हुई?

उ. व्यास संगीत विद्यालय की स्थापना सन् 1937 ई. में दादर, मुम्बई में पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के शिष्यों पंडित शंकरराव व्यास एवं पंडित नारायणराव व्यास द्वारा की गई। पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने जो एक मार्ग दर्शक तत्व या एक नीति कायम की थी, उसी नीति के अंतर्गत एवं उन्हीं मार्गदर्शक तत्वों के तहत व्यास संगीत विद्यालय की स्थापना हुई। जब मार्गदर्शक तत्व मालूम थे तो उन्हीं के तहत विद्यालय में संगीत शिक्षा का अध्ययन होता था। लोगों में संगीत की जानकारी बढ़ाना, संगीत के गुणों का उनमें विकास करना व संगीत शिक्षा के इच्छुक विद्यार्थियों को विधिवत् जैसे-प्रथम वर्ष, द्वितीय वर्ष व तृतीय वर्ष जैसे संगीत शिक्षा उपलब्ध कराना यह तत्व शुरू से ही विद्यालय में स्थापित किए गए थे, जो तब से आज तक निरंतर चले आ रहे हैं। विद्यालय में जिस प्रकार से शिक्षा दी जाती है उससे न केवल विद्यार्थियों में रूचि बड़ी है बल्कि दिन व दिन संख्या भी बढ़ती गई।

प्र. विद्यालय की स्थापना दादर में कहां पर और कैसे की गई?

उ. विद्यालय की स्थापना दादर में उस समय एक बहुत बढ़ी इमारत हुआ करती थी जो 'बिस्मिल्लाह बिल्डिंग' के नाम से प्रचलित थी वहां हुई। इस इमारत के मालिक एक मुस्लिम परिवार से थे जो बिस्मिल्लाह नाम से जाने गए। पिताजी (पंडित नारायणराव व्यास) व चाचा जी (पंडित शंकरराव व्यास) ने जब उनसे बोला कि उन्हें इस इमारत में कुछ जगह चाहिये किराये पर, तो उन्होंने पूछा कि किस कार्य के लिये जगह चाहिए। इस पर उन्होंने कहा कि संगीत की कक्षा खोलना चाहते हैं। संगीत की कक्षा के बारे में सुनते ही वो बोले कि नहीं! नहीं! हम नहीं देंगे संगीत की कक्षा के लिए जगह। कोई नाच-गाने का कोठा थोड़े ही शुरू करना है। इससे उस समय में संगीत के प्रति समाजिक सोच का भी पता चलता है। तत्पश्चात् पिताजी व चाचाजी ने उन्हें समझाया कि संगीत की कक्षा आप जैसा समझ रहें है नाच-गाने का वैसा बिल्कुल नहीं है। उन्हीं दिनों पिताजी का एक कार्यक्रम था। पिताजी ने उन्हें अपने कार्यक्रम में आमंत्रित किया और कहा कि आप आइये और सुनिए कि किस तरह का संगीत हम विद्यार्थियों को सिखाते हैं और यहां किस प्रकार का स्कूल होगा। इस पर वह कई कार्यक्रम में आए व प्रभावित होकर उन्होंने कहा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि आप यहाँ स्कूल शुरू करिए एवं जितनी आपको जगह चाहिए ले लीजिए चाहे तो पूरी इमारत किराए पर ले लीजिए। लेकिन उस समय तो पूरी इमारत किराए पर लेने की जरूरत नहीं थी क्योंकि संगीत सीखने वालों की संख्या भी सीमित थी एवं आर्थिक स्थिति भी ठीक नहीं थी, अतः चार-पांच कमरे किराए पर लेकर सन् 1937 ई. में व्यास संगीत विद्यालय की स्थापना की गई।

प्र. तो क्या विद्यालय के लिए जो जगह ली गई थी, अभी भी किराए पर है?

उ. हां, अभी किराए पर ही है।

प्र. जब यह विद्यालय खुला तब वहां शुरूआत में विद्यार्थियों की संख्या को लेकर भी परेशानी का सामना करना पड़ा होगा?

उ. उस समय क्या था कि समाज में संगीत और संगीत शिक्षा के प्रति रूचि बढ़ रही थी और समाज का भी संगीत के प्रति देखने का नजरिया बदल रहा था। यह सब पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के कार्य के परिणाम थे एवं उन्हीं के आदर्शों पर चलते हुए उनके शिष्यों ने भी पंडित जी के देहावसान के बाद उनके कार्य को आगे बढ़ाना शुरू किया एवं एक के वाद एक कई विद्यालय खोले गए। इन विद्यालयों के माध्यम से समाज में संगीत के प्रति जो कोठे वाली भावना एवं भिन्न श्रेणी की कला की भावना धीरे-धीरे बदल रही थी। जिससे अच्छे व्यक्ति एवं अच्छे विद्यार्थी आए जो कक्षा चला रहे थे। कक्षा चलाने वालों को भी देखा जाता था कि समाज में उनकी क्या प्रतिष्ठा है, वे कैसे लोग हैं, किस परिवार से हैं इत्यादि इन सब का प्रभाव भी पड़ा। जिससे विद्यालय अच्छे ढंग से चलने लगा एवं विद्यार्थियों की संख्या में भी धीरे-धीरे बढ़ोतरी होने लगी।

प्र. व्यास संगीत विद्यालय में काफी लोग सीखने आते थे, क्या आप कुछ नाम बता सकते हैं?

उ. हां, शुरूआत में तो काफी लोग आए नाम गिने जाएं तो बहुत सारे हैं जिन्होंने विद्यालय में सीखा और संगीत में नाम भी किया। इसके अतिरिक्त दूसरे क्षेत्र के भी लोग आते थे जैसे डॉक्टर, वकील इत्यादि। इसके अलावा फिल्म जगत के लोग भी आते थे। जैसे आशा भौंसले वह विशेष रूप से आती थी एवं हमारे चाचा पंडित शंकर राव व्यास से सीखती थीं। पंडित शंकरराव व्यास संगीत निर्देशक भी थे। एवं उनके निर्देशन में आशा जी ने कई गाने भी गाए थे। पृथ्वीराज कपूर उस समय नजदीक ही रहते थे। राजकपूर के पिताजी एवं पूरा कपूर परिवार संगीत का बहुत शौकीन था। पृथ्वीराज कपूर मेरे पिताजी से सीखने आते थे वह साथ में अपने बच्चों राजकपूर एवं शम्मी कपूर को भी साथ लेकर आते थे। वह खुद सीखते थे एवं बच्चों को भी साथ बैठाते थे।

प्र. क्या आपने भी व्यास संगीत विद्यालय में ही संगीत शिक्षा प्राप्त की थी?

उ. बिल्कुल, यहीं व्यास संगीत विद्यालय से मैंने शिक्षण ग्रहण किया। जब पिताजी मुम्बई में होते थे तो वह शाम को विद्यालय जाते थे, बैठते थे एवं कक्षाएं कैसे होती थी, सब देखते रहते थे। कभी-कभी कोई शिक्षक उपस्थित नहीं होते थे या नहीं आते थे तो उनकी अनुपस्थिति में वह खुद बैठते थे, कक्षा लेते थे। हमें भी उन्होंने यही शिक्षा दी कि बैठो, कक्षा में बैठ कर सीखो लेकिन जहां जरूरत हो तो वहां कक्षा भी लो।

प्र. जब आप सीखते थे उस समय एवं वर्तमान में विद्यार्थियों और अध्यापकों की सोच में आप क्या फर्क महसूस करते हैं?

उ. बदलाव तो बहुत आ गया है, क्या है कि उस समय लोगों के पास समय था इतनी व्यस्तता नहीं थी, इतने वाह्य आकर्षण नहीं थे। जैसे उस समय सुनने के लिए बस रेडियो था जो सुनने का एक मात्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साधन था। फिर टीवी आ गया, चौनल आने लगे, फिर 24 घंटे की टीवी हो गया, फिर भिन्न-भिन्न प्रकार के चैनल आने लगे इत्यादि जो लोगों का एक मनोरंजन का साधन बन गया जिससे लोगों में व्यस्तता बढ़ गई। आज चाहते हुए भी लोगों को अगर संगीत सीखना है तो वह इसके लिए अधिक समय नहीं दे सकते, क्योंकि अलग-अलग विषय उनके पास है एवं व्यस्तता भी बहुत बढ़ गई है। काफी विद्यार्थी तो इस वजह से नहीं आते, लेकिन एक तरह से यह अच्छा भी है क्योंकि जो रुचि रखता है वही इसमें आए। एक समय था जब गाना-बजाना सीखकर क्या करोगे इसमें रोजगार की सम्भावना कम है, यह प्रश्न मन में रहता था। परन्तु आज संगीत सीखने के बावजूद आगे बहुत सारे मार्ग है, इतनी अस्थिरताएं अब नहीं है आप अपनी संगीत शिक्षा का उपयोग कई तरीकों से कर सकते हैं। कई सम्भावनाएं आज सामने है, जिससे विद्यार्थियों की संख्या में भी काफी बढ़ी है।

प्र. गांधर्व महाविद्यालय में पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने अपने शिष्यों को कई चीजें सिखाई भी परन्तु क्या कारण रहा कि आगे की पीढ़ी वैसा कार्य नहीं कर पाई?

उ. आगे की पीढ़ी तैयार, मतलब वही बात है ना कि आज जो है वह संगीत में कितने माहिर हैं। देखा गया है कि संगीत में तो आप बहुत माहिर हैं लेकिन मैनेजमेंट और एडमिनिस्ट्रेशन में जीरो हैं अच्छी संस्थाएं शुरू तो हुई और आपके नाम पर भी चली परन्तु आगे ऐसा क्या हुआ कि आपके रहते हुए ही सब गोल हो गई? इसलिए ये देखा गया है कि संस्था चलाना और संगीत सीखना ये अलग चीज़ है। स्पेशलाइजेशन का जमाना आ गया है। मैनेजमेंट और एडमिनिस्ट्रेशन का जमाना आ गया है। कई लोग आज कहते है कि पंडित पलुस्कर ने इतनी बड़ी संस्था खोली, महाविद्यालय स्थपित किए, बडे-बडे लोगों को शिक्षा दी वे तो आदर्श थे। लेकिन उन्होंने संस्था चलाने और उसके मैनेजमेंट एवं एडमिनिस्ट्रेशन पर इतना ध्यान नहीं दिया। इसलिए ही उनकी संस्था घाटे में चली गई और इस वजह से नीलाम करनी पड़ी। ऐसे कहने वाले लोग भी हैं। लेकिन सही से यदि विचार किया जाए तो क्या स्थिति सामने आती है कि उस समय पंडित वि.दि पलुस्कर की इतनी बड़ी संस्था नीलाम हो गई? इतने बड़े-बड़े उन्होंने 'दिव्य शिष्य' तैयार किए, इतने बड़े-बड़े उनके सफलतम सांगीतिक कार्य रहे हैं। एक तरफ वे संगीत महर्षि एवं संगीत के युग पुरुष रहे व दूसरी ओर उनकी संस्था नीलाम करनी पड़ी। अब ये दोनों चीज़े अलग-अलग हो गई। इसलिए ये सोचा जाने लगा कि संस्था को अवश्यकता किस चीज की है। आपको संस्था चलाने के लिए व्यक्तियों की जरूरत है तो आप एडमिनिस्ट्रेशन चुनिए, मैनेजर चुनिए इत्यादि किसमें कितनी क्षमता है, किस तरह की जरूरत है। मैनेजमेंट और एडमिनिस्ट्रेशन में ले देकर बात आती है आर्थिक स्थिति की। आमदनी कैसी हो, कैसे खर्चा हो, कितनी मात्रा में किस चीज की जरूरत है। फिर कुछ खर्चे जो आपने करने ही हैं जैसे बिजली, पानी इत्यादि। फिर दूसरी तरफ संस्था के विकास के लिए भी धन की आवश्यकता होगी। ये सब जोड़ बैठाना और संस्थाओं का एडमिनिस्ट्रेशन और मैनेजमेंट करना ताकि संस्था का स्तर बढ़ता जाए, बड़ी संख्या में विद्यार्थियों की संख्या बढ़े एवं संस्था का कार्य अलग-अलग दिशाओं में जाए इत्यादि। संस्था में एडमिनिस्ट्रेशन और मैनेजमेंट के लिए जो निपुण लोग हों, जो संस्था को आगे ले जाने वाले हों उनके विचार भी आगे आने चाहिए। मेरे विचार से तो यह ठीक है।

प्र. अभी जो संस्थाएं चल रही हैं जिस तरह से कार्य कर रही हैं, उसमें क्या आपको लगता है कि अच्छे से कार्य हो रहा है या कुछ बदलाव होने चाहिए?

उ. एक तरफ कार्य बहुत अच्छा भी हो रहा लेकिन दूसरी तरफ नहीं भी हो रहा। इसमें एक तरह जैसे शीर्ष संस्था है या मार्गदर्शन देने वाली। ऐसी कोई शीर्ष संस्था या ऐसे कोई शीर्षस्थ व्यक्तित्व की आजकल कमी दिखाई दे रही है। आजकल व्यक्तित्व की तो बात करना बेईमानी है क्योंकि संस्थाएं हैं, व्यक्ति आते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं जाते है लेकिन पिछली संस्थाओं के कार्य जो अन्य संस्थाओं को एक प्रेरणा दे या आदर्श के रूप में मार्गदर्शन दे, तो ऐसी संस्थाओं की कमी दिखाई देती है। इसमें संस्थाएं अपना विकास अपने-अपने तरीके से कर रही हैं। एक आर्गेनाइज्ड और एक विशेष ध्येय को सामने रखते हुए, औरों को साथ लेते हुए चलना ये बात अब नहीं दिखाई देती।

प्र. कई संस्थाओं में मैने देखा कि सिखाने का स्तर बहुत ही कम हो गया है, इनमें इतना ध्यान नहीं दिया जा रहा। इसका क्या कारण है?

उ. कई संस्थाओं की स्थिति है कि चाहे वह निजी संस्था हो या सरकारी संस्था उनमें आजकल निष्ठा बहुत कम दिखाई देने लगी है। ये दोनों तरफ से है, चाहे वह विद्यार्थी हों या अध्यापक। आपको इतना करना है, ऐसे करना है, इतनी मेहनत करनी है इत्यादि यह भावना बहुत कम हो गई है। अब जैसे-तैसे करके डिग्री या प्रमाण पत्र चाहिए। इसका चलन इतना ज्यादा बढ़ गया है कि कुछ आए या न आए लेकिन प्रमाण पत्र चाहिये।

प्र. पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर गांधर्व महाविद्यालय में विद्यार्थियों से बॉण्ड भरवाते थे और जिसमें उन्हें विद्यालय में रहकर ही सीखना पड़ता था। क्या वर्तमान में इसकी सम्भावनाएँ हैं?

उ. हां, हो सकता है। इस तरह के प्रयोग नहीं किए गए हैं लेकिन अगर करें तो ऐसा हो सकता है। पंडित जी ने बॉण्ड इसलिए भरवाया था कि अच्छे घरों के बच्चां को बुलाकर हम उनको फ्री में शिक्षा देंगे और उनका रहन-सहन, खाना-पीना एवं वस्त्र इत्यादि का सारा खर्च भी करेंगे, संगीत सिखाएंगे और उनसे एक भी पैसा नहीं लेंगे। लेकिन कुछ लोग जैसे आए और देखा और अच्छा नहीं लगा, जब मन किया भाग जाएगा। इससे क्या था कि कितना समय व्यर्थ हुआ एवं पैसा भी व्यर्थ गया, ऐसा न हो तो इसलिए उन्होंने बॉण्ड बनवा लिए थे। बीच में यदि कोई व्यक्ति छोड़ के चला जाएगा तो उसके परिवार वाले जितना खर्च हुआ है सब भरेंगे। आज के समय में भी यह हो सकता है जैसे विद्यार्थियों को स्कॉलरशिप दी जाती है तो इस तरह का एक बॉण्ड भी हो सकता है कि जिस कार्य के लिए आपको स्कॉलरशिप दी गई है और अगर आप बीच में छोड़ के जाते हैं तो आपको स्कॉलरशिप के सारे पैसे वापिस देने होंगे। इस तरह कई प्रयोग किए जा सकते हैं।

प्र. आगे आपको क्या लगता है? संस्थाओं के भविष्य के बारे में आप क्या सोचते हैं?

उ. अच्छा होना चाहिए, यही हमारी कामना है। लेकिन कार्यकर्ता, समर्पित कार्यकर्ता बहुत कम हैं। एक जमाने में कार्यकर्ता धन की अपेक्षा नहीं करते हुए कार्य करते थे, आजकल स्थिति बदल गई है वह भी समझ में आ सकती है। आजकल धन उपलब्ध है, मिलता भी है लेकिन उसे लेकर भी कार्य को आगे बढ़ाना, ये जो प्रवृति है कुछ कम दिखती है। पिछले जमाने में बहुत लोग धन की अपेक्षा न करते हुए कहते थे कि मैं बस एक कार्यकर्ता हूँ मुझे कार्य में दिलचस्पी है। आज क्या स्थिति है कि धन की अपेक्षा भी करो और मिल भी जाएगा परन्तु फिर भी कार्य उस तरह का नहीं मिलेगा। जब आपको धन मिल जाए तो आपकी एक चिन्ता खत्म हो गई लेकिन उसके बाद आप अपनी पूरी शक्ति से कार्य करें तो वह पूरी शक्ति से कार्य में जुट जाने की जो भावना है वह बहुत कम हो गई है। आज अच्छे कार्यकर्ताओं की बहुत जरूरत है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मंच प्रस्तुतियों में तराना, त्रिवट एवं चतुरंग का स्थान

सौरभ चौहान

भारतीय शास्त्रीय संगीत की ख्याल गायकी का प्रतिनिधि घराना ग्वालियर घराना अपनी अष्टांग गायकी के लिये प्रसिद्ध है। साथ ही यह घराना तराना, त्रिवट एवं चतुरंग इन विशिष्ट गायन शैलियों की सौंदर्यमयी प्रस्तुतिओं के लिए भी उतना ही जाना माना जाता है। संगीत महर्षि पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी ने भारतीय रागदारी संगीत एवं उसकी गायन शैलियों को संजोने के साथ-साथ संगीत को प्रचारित प्रसारित करने में अग्रणी भूमिका निभाई है एवं भारतीय संगीत का मार्ग प्रशस्त किया है।

तराना, त्रिवट एवं चतुरंग ये तीनों ही ख्याल अंग की चीजें हैं व रागदारी संगीत के गायन प्रकार हैं, जिन्हें ख्याल गायक अपनी मुख्य प्रस्तुति के बाद ही प्रस्तुत करते हैं। इन तीनों विधाओं में राग की शुद्धता बनी रहती है। किन्तु इनकी बढ़त के तरीके अलग-अलग हैं। इन तीनों विधाओं की ही प्रदर्शन की समय सीमा ख्याल के अपेक्षाकृत काफी कम होती है, यह तीनों गायन विधाएं मूल गायन विधा ख्याल के उपरान्त ही प्रस्तुति में वैशिष्टय दिखाने के लिए गाई जाती हैं। जिनका प्रस्तुति समय पांच से दस मिनट तक होता है। इन विधाओं की लय मध्य से द्रुत एवं अति द्रुत होती है। वैशिष्टय की दृष्टि से इन तीनों गायन विधाओं का अभ्यास पृथक-2 होता है इसलिये इन विधाओं पर अधिकार प्राप्त करना कठिन काम है। आजकल इन गायन विधाओं के कलाकार बहुत कम ही हैं।

पंडित विद्याधर व्यास आज के समय में एक ऐसे विरले कलकाार हैं जो ख्याल के साथ-साथ इन तीनों गायन विधाओं पर समान अधिकार रखते हैं। और अपनी प्रत्येक मंच प्रस्तुति में पंडित विद्याधर व्यास प्रथम विस्तृत राग के अंत में इन विधाओं में से एक न एक प्रकार अवश्य प्रस्तुत करते हैं और अपने श्रोताओं को चमेंत्त कर आनन्द विभोर कर देते है।

इतिहास : अब हम ये जानने की कोशिश करेंगे कि इन तीनों विधाओं का क्या इतिहास है, व ये कितनी प्राचीन हैं? प्राचीन काल से ही निबद्ध रचनाओं का विवरण हमें ग्रंथों में प्राप्त होता है। निबद्ध गायन शैली में 'प्रबंध गायन' का स्थान सर्वोच्च माना जाता है तथा कोई भी रचना जो स्वर, पद व ताल से निबद्ध है वो प्रबन्ध कहलाती है। इस दृष्टि से आधुनिक गायन शैलियों में ध्रुपद,धमार, ख्याल, तराना, त्रिवट, चतुरंग आदि प्रमुख शेलियाँ प्रबन्ध के ही समरूप है।

आधुनिक गायन शैलियों में ख्याल सर्वाधिक प्रचलित गायन विधा है और तराना, त्रिवट व चतुरंग इसके अंगभूत प्रकार हैं। आईये सर्वप्रथम तराना के इतिहास को जानने का प्रयास करें:-

तराना भारतीय रागदारी संगीत का एक सर्वविदित गायन प्रकार है। 'तराना' राग व तालबद्ध स्वर रचना है जिसकी पद रचना ऐसे शब्दों से होती है जिनको निरर्थक शब्द यादि जिनका कोई अर्थ नहीं होता, ऐसे शब्दों से होती है।

इस गायन शैली का नामकरण कब और कैसे पड़ा इस पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करनेपर हिन्दुस्तानी संगीत की विशेषताओं का पता चलता है। यह शब्द जितना भारतीय भाषा यानि हिन्दी व उर्दू का मिला जुला रूप है उतना ही ईरानी भाषा का भी है। 'तराना' शब्द मूलतः फारसी भाषा का है, जिसका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ है – 'नग्मा' या 'गाना' अर्थात् एक विशेष प्रकार का गीत जो प्रायः जोशीली धुनों के लिये प्रयुक्त होता है। बोलचाल की भाषा में किसी भी गीत या गाने को 'तराना' कहते हैं।

तराना का संबंध स्वर तथा वर्ण दोनों से होता है। इसका निर्माण निरर्थक शब्दों से होता है, जिसमें केवल लय और शब्दों का वैशिष्ट्य रहता है। 'तराना' शब्द सम्भवतः विदेशियों के आगमन के साथ ही भारत आया और यहां प्रसिद्ध हो गया। किन्तु यहां यह जान लेना आवश्यक है कि भारत में इसके पूर्व भी निरर्थक शब्दों से युक्त रचनाएं विद्यमान थीं। और इस प्रकार के गीतों के लिये अन्य भारतीय संज्ञा निगऍत या बर्हिगीत भारत में प्रसिद्ध थी। इन निर्गत या बहिर्गत रचनाओं को तराना कहा जाने लगा? इसके लिए यही कहा जा सकता है कि अरबी व फारसी संस्कृतियों के मिश्रण से भारतीय संगीत के कई प्राचीन नाम लुप्त हो गए और त्रितंत्री के स्थान पर सितार या सेतार, गीत के स्थान पर 'नग्मा', चर्म वाद्यों के लिये 'तब्ल' या तबला आदि शब्द संगीत क्षेत्र में प्रचलित हुये। इसी तरह निर्गत या बहिर्गत को 'तराना' कहा जाने लगा होगा।

चतुरंग – अब हम चतुरंग की चर्चा करेंगे। यह एक गायन का प्रकार है जो निबद्ध गान के अंतर्गत आता है। चतुरंग शब्द के दो संधि विच्छेद विद्वानों द्वारा बताये जाते हैं, पहला अर्थ है चतुः + रंग अर्थात् जिस प्रबंध रचना के चार रंग है। तथा दूसरा चतुर + अंग अर्थात् जिस प्रबंध में चार अंग है उसे चतुरंग कहते है। जहां तक चतुरंग शैली का प्रश्न है यह शैली प्रायः छोटे ख्याल के सामानान्तर होती है। मतलब सामान्य ख्यालों में जहां राग और गति के सामंजस्य के कला का उद्घाटन और भाव प्रदर्शन होता है वहीं चतुरंग में अन्य शैलियों के तुलना में वैशिष्ट्य अधिक हो जाता है।

चतुरंग में चार अंगों का समावेश होता है– सामान्यतः ये चार अंग हैं– पद, तराने के बोल, सरगम तथा मृदंग अथवा पखावज के बोल। कुछ चतुरंगो में पद तथा अन्य भाषाओं में भी गाया जाता है।

चतुरंग नामक प्रबंध का प्रचलन आठवीं शताब्दी में मतंग के समय से है। मतंग ने सर्वप्रथम चतुरंग नामक प्रबंध का उल्लेख अपने ग्रंथ बृहदेशी में किया। उनके अनुसार–

"रागताल चतुष्कोण यत्र भाषा चतुष्ठयम्
गीयते गीत चतरै श्चतुरघ्ग स उच्चते।।

अर्थात् चतुरंग के चारों भाग में चार रागों में, चार तालों तथा चार भाषाओं में गाये जाते है। आधुनिक चतुरंग में चार अंगों और चार भागों का होना अनिवार्य नहीं हैं। आज के चतुरंग रचना किसी एक ही राग और एक ही ताल में निबद्ध होते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि मतंग का चतुरंग प्रबंध आधुनिक चतुरंग से पर्याप्त भिन्न है, परन्तु बृहदेशी में चतुरंग नाम का उपयोग होने से यह ज्ञात होता है कि यह नाम 1200 वर्ष पूर्व भी विद्यमान था।

आधुनिक चतुरंग की तुलना संगीत रत्नाकर में वर्णित चतुर्मुख से की जा सकती है। गुन्नयात-उल-मुन्नयात में प्राचीन प्रबंध गीतियों के प्रकारों की चर्चा करते हुए लेखक ने चितरंग (चतुरंग) नाम का उल्लेख किया है। लेखक के अनुसार चितरंग एक प्रकार का प्रबंध था जिसे 'चतुर्मुख' भी कहा गया तथा यह स्वर, पाटाक्षर, पद, तथा तेन के मिश्रण से युक्त होता था। चितरंग (चतुरंग) को चारों भागों का गायन चार रागों, चार तालों तथा चार भाषाओं में किया जाता था तथा राग ताल एवं भाषा प्रत्येक अंग के लिए भिन्न होती थी।

यहां यह भी विचारणीय है कि मतंग ने अंपने ग्रंथ बृहदेशी में प्रबंध की चर्चा करते हुए एक और प्रबंध का उल्लेख किया है जिसे 'चतुष्पदी' कहा गया तथा जो आधुनिक चतुरंग के समान है। मतंग के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुसार-

'यत प्रतिपदार्थ तु गीतं तालयुक्त भवेत।

स्वर तेनक संयुक्तोः सा चतुष्पादिका भवेत्।।

अर्थात् जिस गीत के चार भागों में प्रत्येक में पद, ताल, स्वर तथा तेनक हो वह चतुष्पादिका हैं। यह भी विचारणीय है कि कुछ ग्रंथकारों के अनुसार चतुरंग के पांच अंग थे ना कि चार व पांच अंग इस प्रकार थेः- स्वर, तराने के बोल, ताल, पद तथा पाटाक्षर। किन्तु आजकल ताल को रचना का ही आधार माना जाता है, इसलिये इसे एक अंग के रूप में ग्रहण नहीं किया जाता। और इस प्रकार चतुरंग को चार अंग वाली रचना ही मानते हैं।

त्रिवटः- भारतीय गायन शैलियों की विचित्रता का उत्कृष्ट उदाहरण त्रिवट जैसी गायन शैली में देखने को मिलता है। ये भारतीय संगीत की महानता है कि भावनाओं को प्रकट करने हेतु विभिन्न गायन शैलियों का निर्माण हुआ, जहां रागदारी मुख्य अंग बनाकर प्रस्तुत करने के लिये ध्रूपद व ख्याल जैसी विधाए हैं वहीं लय और शब्दों के वैशिष्ट्य को प्रदर्शित करने के लिये तराना व त्रिवट जैसी विधाएं भी बनाई गई हैं। त्रिवट मूलतः तीन धातुओं से मिलकर बनी रचना को कहा जाता है। परन्तु केवल पखावज के बोलों से निर्मित त्रिवट भी मिलते है। अतः यह गायन विधा मुख्यतः द्रुत व अति द्रुत लय में पखावज के बोलों की राग में निबद्ध रचना है जिसमें कलाकर लय के विभिन्न आयामों को दर्शाता है, इस गायन शैली में कलाकार का ताल, लय व लयकारी पर पूर्ण अधिकार होना आवश्यक है।

अब यदि हम आधुनिक त्रिवट तथा प्राचीन प्रबंधों की तुलना करें तो यह ज्ञात होता है कि कुछ प्रबंध तीन अंग युक्त थे जिनको हम आधुनिक त्रिवट के समान मान सकते है। शारंगदेव ने अपने ग्रंथ संगीत रत्नाकर के अन्तर्गत 'त्रिवट' नामक प्रबंध का उल्लेख किया है जो विप्रकीर्ण प्रबंध का एक प्रकार है तथा आधुनिक त्रिवट के समकक्ष है। त्रिवट की व्याख्या करते हुए शारंगदेव कहते हैं-

''पादत्रयं त्रिपथके पाटैस्य विरफ़देः स्वरैः।

इति त्रिपथि प्रबन्धाः।।

अर्थात् त्रिपथ के अन्तर्गत तीन अंगों का जिनमें पद के साथ पाटाक्षर व विरफ़द समावेश था। यहां यह उल्लेख करना उचित ही होगा कि प्राचीन काल में एक 'त्रिवंगी' नामक प्रबन्ध का उल्लेख भी हमें मिलता है।

आठवीं शताब्दी में मतंग ने भी त्रिवंगी नामक प्रबंध का उल्लेख किया। मतंग ने अपने ग्रंथ 'बृहदेशी' में त्रिवंगी प्रबंध का उल्लेख किया है, उनके अनुसार-

''पदैः स्वरैस्तथा पारैर्वृन्तत्रथपदेन चं

तालतयविमिश्रेण विभघ्गिरभिधीयते।''

अर्थात् जो रचना पद, स्वर तथा पाट से युक्त हो तथा वह 'त्रिवंगी' प्रबंध कहलाती है।

'त्रिवंगी' प्रबंध का उल्लेख शारंग्देव द्वारा उनके ग्रंथ 'संगीत रत्नाकर' में भी दिया गया है। उनकी व्याख्या के अनुसार-

''स्वरैः फटैः पदेरूक्तस्त्रिभघ्गि स च पज्चघा।

एकस्त्रिभघ्गितालेन वृन्तेनान्यभघ्गिना।।''

अर्थात् त्रिवंगी के अंतर्गत स्वरों, पाटाक्षरों तथा पदों का समावेश होता है। त्रिवंगी के पांच तत्व है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो निम्नानुसार हैं–

1- यह त्रिवंगी ताल के साथ गाया जाता है।

2- यह त्रिवंगी छंद के साथ गाया जाता है।

3- इसका गान तीन तालों में होता है।

4- यह तीन छंदों में गाया जाता है।

5- यह तीन देवताओं की आराधना हेतू गाया जाता है।

कर्नाटक संगीत के अन्तर्गत व्यंक्टमखी कृत 'चतुर्दण्डी प्रकाशिका' में भी 'त्रिवंगी' प्रबंध को स्थान मिलता है। तथा इसका उल्लेख 'श्लोक संख्या 186 से 193 के मध्य किया गया है। अतः यह कहा जा सकता है कि 'त्रिवंगी' प्रबंध गायन की ऐसी विधा की जिसमें तीन अंगों का प्राधान्य होता था। ये गायन विधा आधुनिक त्रिवट के समान नहीं है।

किसी भी गायन विधा के इतिहास को समझने के लिये स्थानीय भाषा, साहित्य तथा विभिन्न रचनाओं पर दृष्टि डालना आवश्यक होता है। इन रचनाओं से यह सत्यापित होता है कि चतुरंग तथा त्रिवट गायन विधाओं का प्रचलन सदियों से रहा है। मध्यकाल में भी ये विधाएं प्रचलित थीं। उदाहरण के तौर पर प्रसिद्ध गायक 'बैजू' के एक पद पर दृष्टि डाली जा सकती है। जो इस प्रकार है–

गीत नाद की आसपरी, धुरपत परबंधा, तुपक
त्रेवट तिलाना चतुरंग प्यारे सोहत भूपर।।
कहे बैजू नायक उन्नत जुन्नत की बजीर मन
राजा राज करत हरि को ध्यान धरे।

जैसा मैंने पहले ही कहा है कि पं. विद्याधर व्यास जो पलुष्कर परम्परा के सुनामधन्य गायक हैं, और तराना, त्रिवट व चतुरंग की विकट गायकी में निष्णात हैं। यहां प्रस्तुत हैं इन गायन प्रकारों के सम्बन्ध में पंडितजी के विचार :-

वर्तमान समय में तराना, त्रिवट एवं चतुरंग जैसी अप्रचलित गायन विधाओं के कुशल गायक के तौर पर केवल एक नाम ही संज्ञान में आता है वह है– पंडित विद्याधर व्यास। पंडितजी ने ग्वालियर घराने की पलुष्कर परम्परा और उसके साथ तराना, त्रिवट एवं चतुरंग इन गायन शैलियों की शिक्षा अपने गुरु एवं पिता पंडित नारायण राव व्यास से ली। वर्तमान में पंडितजी के अतिरिक्त कोई और तराना, त्रिवट एवं चतुरंग जैसी उद्भट गायन प्रकारों का इतना सहज, शास्त्रेक्त, व आकर्षक प्रदर्शन करने वाला कलाकार द्रष्टिगोचर नहीं होता। तराने के विषय में बात की जाये तो पंडित जी इसका गायन पारम्परिक रफ़प से जैसा की पंडित नारायण राव व्यास और पं. विनायक राव पटवर्धन गाते थे उसी प्रकार करते हैं। पंडित जी के अनुसार– 'आधुनिक समय में तराने का स्वरफ़प कुछ बदल गया है अब इसमें ख्याल अंग की तानों का प्रयोग भी किया जाने लगा है। परन्तु पलुस्कर जी की शिष्य परम्परा में तराने को उसके बोलों के द्वारा ही बढ़त करके प्रस्तुत किया जाता रहा है।' तराने में तोम् तननन, इन बोलों का विस्तार किया जाता है और पंडित जी के अनुसार ये शब्द 'ओम् अनन्त हरि नारायण' इन शब्दों के बीजाक्षर हैं। इनको इस तरह गाकर गायक ईश स्तुति करते थे। साथ में दिर दिर दिर दिर व तोम् दिरदिर इतयादि शब्द विविध वाद्यों के पाटाक्षर हैं। तराने अधिकांश तीनताल व एक ताल में निबद्ध होते हैं, जिनकी लय मध्य, द्रुत एवं अतिद्रुत होती है। सितार वाद्य की प्रस्तुति के अंत में बजाए जाने वाले भाग 'झाला' के समकक्ष तराना विधा का विकास हुआ, यदि ऐसा कहें तो गलत नहीं होगा। क्योंकि गायन की प्रस्तुति के अंत में प्रस्तुत तराना भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसी तरह वैशिष्टयता और चमत्कार का भाव श्रोता के मन में बनाता है जैसे झाला की प्रस्तुति से बनती है।

पंडित जी के अनुसार जैसा की नाम से ही जाहिर है। चतुरंग में चार अंग होते है, वैसे ही त्रिवट में तीन अंग होते हैं। पहला पखावज के बोल दूसरा काव्य और तीसरा सरगम या तराने के बोल। त्रिवटः की एक विशेष बात यह होती है कि त्रिवट में पखावज के बोलों को अधिक अहमियत दी जाती है। कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि सिर्फ पखावज के बोल ही त्रिवट में रहते हैं अतः एक ही अंग रहता है फिर भी वह त्रिवट ही कहलाता है। तो त्रिवट में पखावज के बोल सबसे महत्वपूर्ण होते हैं। उसके बाद आता है, काव्य और उसके बाद या तो सरगम आती है या तराने के बोल, लेकिन त्रिवट में तराने के बोल कम ही दिखते हैं। ज्यादा सरगम ही दिखती है। त्रिवट को अधिक्तर द्रुतलय में गाते हैं इसलिए इस गायन विधा की प्रकृति चंचल है। और चमत्कार उत्पनन करना ही उद्देश्य है। त्रिवट की बंदिश में स्थाई, अंतरा दो ही भाग होते हैं। अधिक्तर 'त्रिवट बंदिश' तीनताल में होती हैं। कुछ बंदिशे झपताल एवं चारताल में निबद्ध दृष्टि गत हैं।

पुत्तराज गवई सम्मान ग्रहण करते हुए पं. विद्याधर व्यास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरे गुरु

सानिका गोरेगांवकर

गुरुजी से सीखते वक्त एक बात वे हमेशा मुझसे कहते थे, 'देखो सानिका, गुरु शिष्य को पहले उंगली पकडकर चलना सिखाता है, लेकिन आगे का रास्ता उस शिष्य को खुद से चलना चाहिए और तभी गुरु को सच्चा आनन्द मिलता है।' यह बात दिन रात मेरे विचार में रहती थी। उस वक्त से मुझे मिलने वाली तालीम से जुडे अनुभव कई बार मैंने लिखकर रखे हैं और इसी विषय पर फिर कुछ लिखने का प्रयास कर रही हूं।

हर एक कला का प्रयोजन अलग अलग रहता है। चाहे वह खुद के समाधान के लिए हो, ईश्वर की प्रार्थना के लिए हो या फिर कला में खुद के योगदान के लिए हो। जब शिष्य का विचार इस पर तय हो, तब उसे उसी तरह तालीम और अनुशासन मिलना चाहिए। मैंने आईटी की नौकरी छोडकर कैरियर के लिए संगीत का क्षेत्र चुना और उसी दौरान मेरे सौभाग्य से मुझे गुरुजी की शिष्या होने का अवसर मिला।

गाना सिखाने के वक्त सबसे पहले बैठक की स्थिति, सांस का नियंत्रण और मन की सहज अवस्था पर गुरुजी ने बताया था। अगर कलाकार खुद अपनी कला का आनंद ले पाए तो ही श्रोतागण को आनंद दे पाता है। इसलिए मन की सहज अवस्था का गाने पर बहुत ही असर पडता है। हर बार तालीम शुरू कराने के पहले वे मुझसे स्वरों का रियाज करवाते हैं। इससे मेरा स्वर लगाव, स्वर संगति तथा स्वर स्तर का अभ्यास होता है, जिसका उपयोग मुझे राग का स्वरूप समझने में होता है। गुरु राग सिखाने के समय 'राग की शक्ल देखकर गाना, राग की चाल देखकर गाना', ऐसा राग का मानवीकरण करके उसकी पहचान करवाते हैं। ग्वालियर घराने के सबसे खास पंचराग है-अल्हैया बिलावल, गौड सारंग, हमीर, छायानट, कामोद। ये राग मैं गुरु जी से सीख पाई, यह उनका मुझे दिया हुआ आशीर्वाद ही है।

रियाज के समय वे सिर्फ गाना ही नहीं लेकिन कई विषय मुझे सिखाते हैं। इस वजह से मेरी संगीत के प्रति दृष्टि विकसित होना शुरू हुआ। गुरुजी ने पहला राग 'भैरव' मुझे चार महीने सिखाया था। 'गायक की पहचान उसकी आवाज होती है'- ऐसा गुरुजी हमेशा कहते हैं। इसलिए सबसे पहले आवाज की तैयारी, ग्वालियर घराने का अनुशासन तथा पंडित पलुस्कर परंपरा की विशेषताएं, हर एक राग का व्यक्तित्व, राग में कई पुरानी और नई बंदिशें, एक राग के परिवेश में बाकी साम्य रखने वाले रागों का अध्ययन, ख्याल गाने की पद्धति, इसके साथ सैद्धान्तिक विश्लेषण-ऐसी बातें मुझे सीखने को मिलीं। अगर 'भैरव बहार' जैसा राग गाना हो तो 'भैरव' और 'बहार' इन दोनो रागों पर पहले विचार और गाना होना चाहिए। यह बहुत महत्वपूर्ण बात गुरु जी ने सिखाई। बंदिश सिखाते समय गुरुजी शब्द पक्ष में ध्यान देने को कहते हैं तथा हरेक बंदिश का अर्थ भी समझाते हैं। ताल विषय में भी श्सभी तालों से मित्रता भाव रखनाश यह उनकी सीख है।

गुरुजी ने आज के युग की महफिल के हिसाब से मुझे अलग अलग गीत प्रकार गाने के लिए प्रोत्साहित किया। मेरी आवाज की गुणधर्म अनुसार उन्होंने खासकर पारंपरिक टप्पा, ठुमरी, तराने, चतुरंग, त्रिवट मुझे सिखाए। गुरुजी सभी गायक-गायिकाओं के गाने सुनने के लिए कहते हैं और उस पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निष्पक्ष निरीक्षण तथा विश्लेषण की आदत डालने को कहते हैं। इस सब तालीम के साथ में एक विचार हमेशा देते हैं कि शिष्य को खुद का गाना गाना चाहिए, तभी उसकी पहचान उसके नाम से होती है। गुरुजी को एक राग उसी तरह बार-बार रटना बिल्कुल ही पसंद नहीं। हर बार उसमें कुछ नया दिखना चाहिए और वह जो नया हो वही गायक-गायिका का योगदान है, ऐसा गुरुजी सिखाते हैं। महफिल में गाने के साथ साथ प्रस्तुति तथा तकनीकी की तैयारी के लिए वे हमेशा मार्गदर्शन करते हैं। इसके अलावा गुरुजी के साथ रहते रहते कई और बातें मैं सीख पाई। किसी महफिल के दौरान उनका संगतकारों के प्रति प्रेम, समय प्रबंधन, उसी तरह से राग चुनना, श्रोतावर्ग का विचार और सभी चीजों का अनुशासन सीखने को मिला।

गुरुजी पारंपरिक घराने के मूल्य और नए युग के विचार के सौन्दर्यपूर्ण संगम हैं। मुझे आज की सामाजिक परिस्थिति और संगीत का भविष्य इस पर वे कई बार मार्गदर्शन करते हैं। इसलिए उन्होंने मुझे विश्वविद्यालयीन शिक्षण पद्धति में आवश्यक अहर्ताएं प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया। साथ ही संगीत विषय में नेट फेलोशिप लेकर डॉक्टरेट करने के प्रोत्साहित किया। गाने में परिपक्वता लाने के लिए यह संयोग ही साबित होता है, ऐसा वे हमेशा कहते हैं। इसमें मुझे सुनीरा कासलीवाल मां जी का भी बहुत आशीर्वाद और मार्गदर्शन मिला।

गुरुजी कई बार पुणे में हमारे घर रहने के लिए आते हैं। तब वे मुझे नानाजी जैसा प्यार करते हैं। हर बार नातिन के लिए उपहार लाते हैं। गुरुजी को मेरे मां के बनाए हुए मराठी व्यंजन बहुत पसन्द आते हैं। खासकर रवा-खवा के लड्डू! मैं, मेरे बडे भाई पराग और भाभी पूजा-हम सबके साथ वे फिल्म देखने भी चलते हैं। उनको हमारे साथ पिकनिक की तरह घूमना भी पसन्द आता है। हमारे घर में गुरुजी का गाना, तालीम चलती है तब सारा घर उनके स्वरों से पुनीत हो जाता है। एक बार गुरु जी ने घर में तालीम के वक्त त्रिवट और चतुरंग की नई रचना की थी। वह दोनो रचनाएं मैं हमेशा प्रसाद के रूप में संभालूंगी और गाऊंगी। 'तुझया कणून मला खूप अपेक्षा आहेत'- अर्थात उनको मुझसे बहुत अपेक्षाएं हैं, ऐसा वे मुझसे कहते हैं। मैं ईश्वर के प्रति यही कामना करती हूं कि मेरी गुरुसेवा-गुरुश्रद्धा में कोई कमी ना रहे और मुझ पर ऐसी ही गुरुकृपा बनी रहे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चित्र दीर्घा

व्यास संगीत विद्यालय की स्थापना के एक वर्ष पूरे होने पर
लिया गया एक दुर्लभ चित्र (सन् 1938)

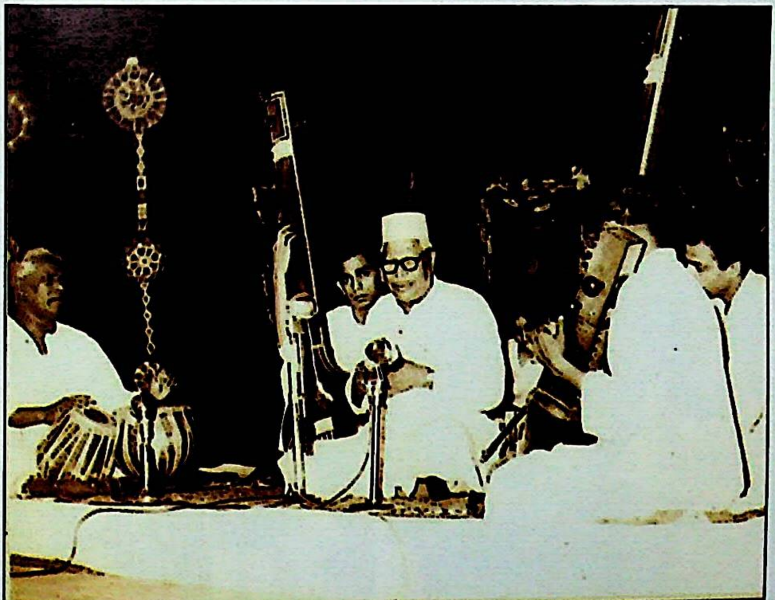

विष्णु दिगंबर जयन्ती संगीत समारोह (सन् 1977) में गायन करते पं. नारायण राव व्यास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

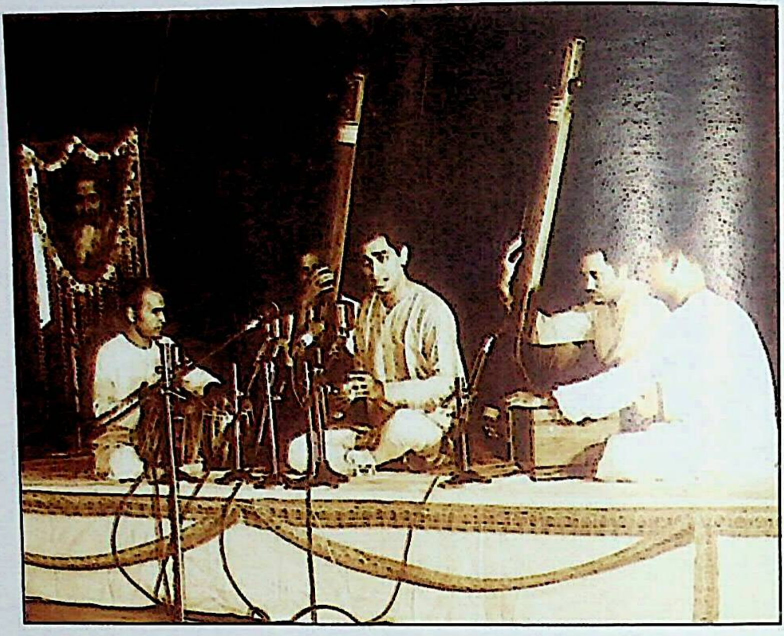

विष्णु दिगंबर जयन्ती संगीत समारोह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

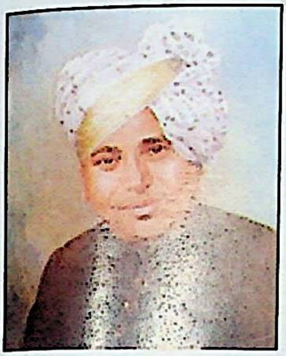

पं. नारायण राव व्यास

पं. शंकर राव व्यास

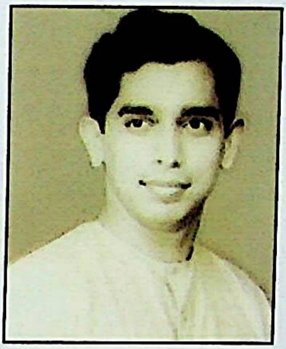

पं. विद्याधर व्यास

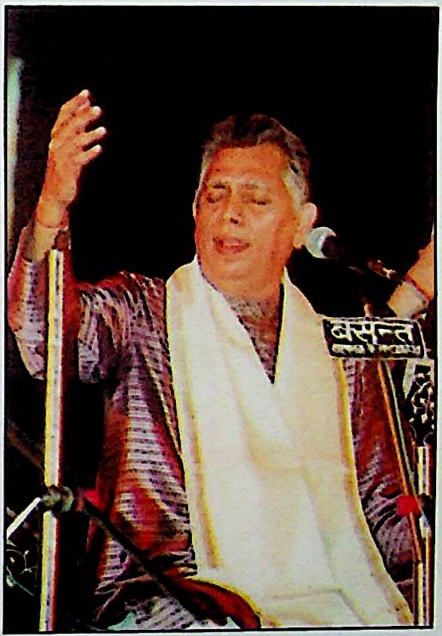

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

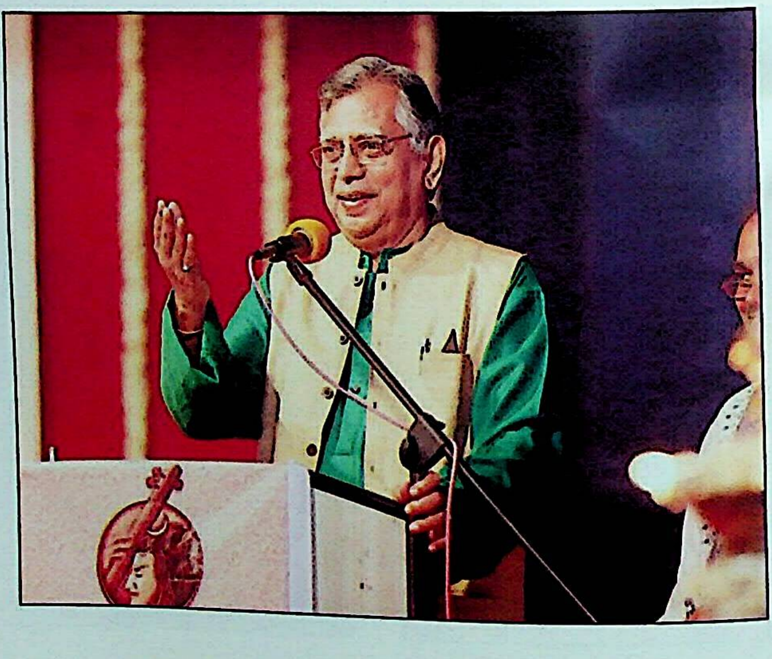

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

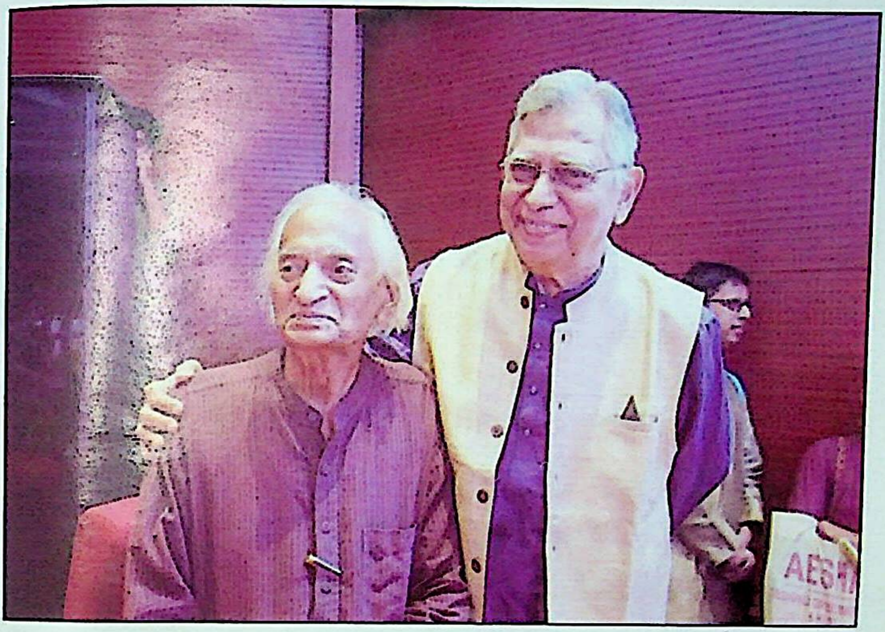

शास्त्रीय गायक एल.के. पंडित के साथ

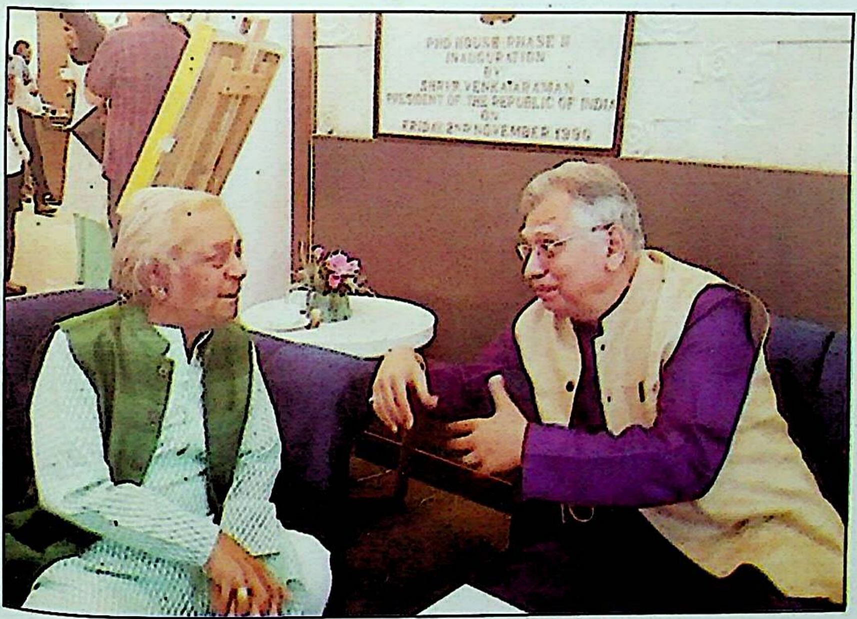

कथक नर्तक पं. बिरजू महाराज के साथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

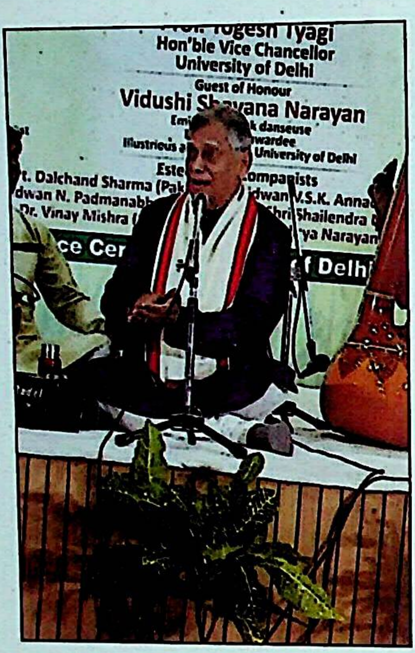

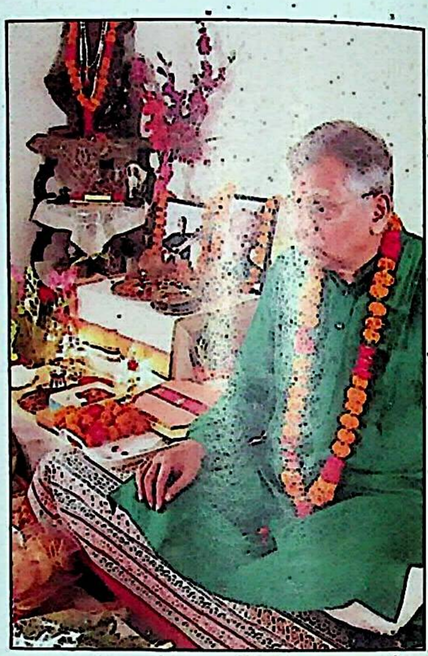

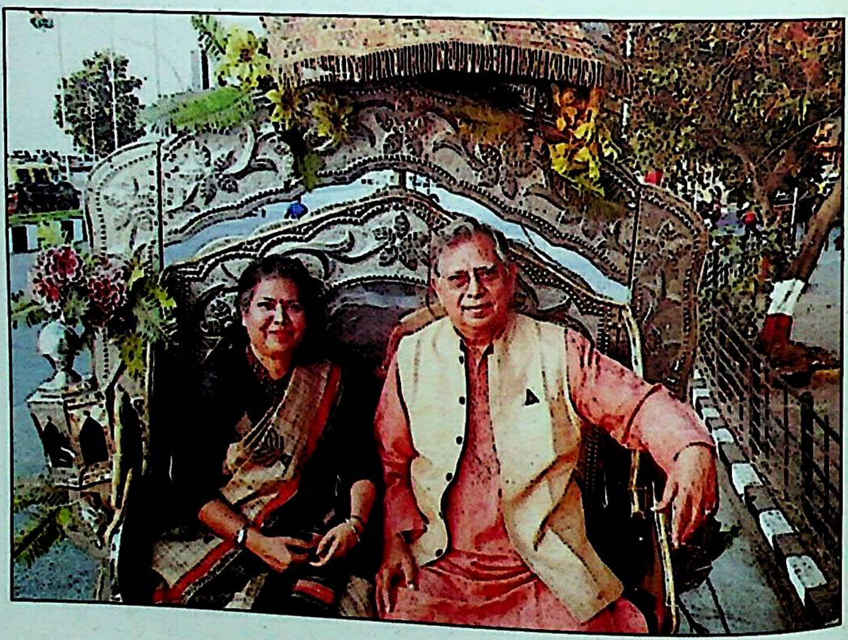

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कला, संगीत और रंगमंच की संगत

अंक -1

उत्तर प्रदेश का रंग परिदृश्य

लखनऊ, वाराणसी, बरेली, शाहजहांपुर, मथुरा, आजमगढ़, और इलाहाबाद के रंगकर्म पर कुंवरजी अग्रवाल, राजेश कुमार, कुमार विजय, अनुपम आनंद, हनीफ मदार, शालिनी वाजपेयी, सुनील मानव, अभिषेक पंडित के आलेख

अर्पणा कौर-कला यात्रा के चार दशक
देवप्रकाश चौधरी का आलेख और बातचीत

स्मृति के कैनवास पर शरद पांडेय
नवीन जोशी और एन.खन्ना का आलेख

औरंगजेब का संगीत विरोध
विजय शंकर मिश्र का शोधपरक आलेख

जतिन दास, जाकिर हुसैन, शाहिद परवेज, नीलाद्रि कुमार से बातचीत

ललित कला अकादमियां और राजनीतिक नेतृत्व-पी.राजीवनयन, सैयद हैदर रजा-रेखा के.राणा, काशी के महादेव- देवाशीष डे, भारतीय संगीत शास्त्र ग्रंथ परंपरा-अर्चना महस्कर, कालविंट की प्रयोगधर्मिता-रागिनी सरना, स्पेस से संगति-अमित कल्ला

संपादक
आलोक पराड़कर

मूल्य- सौ रुपए (एक अंक)
सदस्यता-एक हजार रुपए (दस अंकों के लिए)

संपर्क: 9415466001
naadrangemail@gmail.com

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

JOSHI'S

JALSA AWADH RESIDENCY

Opp. Amitabh Bacchan's Farm House
Chaudhary Khera, Kakori Road, Lucknow

FULL DEVELOPED PLOTS

8795666676
9721482222

JOSHI'S

DEVELOPED BY :
DEVI GANGA
infra housing pvt. ltd.

Jamuna Residency

FULL DEVELOPED PLOTS ✷ DUPLEX ✷ APARTMENTS

NEW SAROJINI NAGAR, KANPUR ROAD, LKO.

8795666676, 9721482222

स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक आलोक पराड़कर द्वारा क्रिएटिव इंक, बी-7, हिमांशु सदन, 5 पार्क रोड, लखनऊ- 226001, उ.प्र से मुद्रित और 3/51, विश्वास खंड, गोमती नगर, लखनऊ-226010, उ.प्र. से प्रकाशित, संपादक - आलोक पराड़कर।

Dr. Urmila Sharma Collection; Varanasi